ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अप्रैल २०१५
Date of Printing = 05-04-15
प्रकाशन दिनांक= 05-04-15
वर्ष ४४ : अङ्क ६
दयानन्दाब्द : १९२
विक्रम-संवत् : चैत्र-वैशाख २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :
दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com
एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

❏ ऋषि दयानन्द कृत 2
❏ वेदोपदेश 3
❏ आर्यसमाज स्थापना... 4
❏ गोवध 6
❏ सूर्य पर मनुष्य 8
❏ लोकसेवा 10
❏ वेदों में नारी 13
❏ काश ऐसा.... 16
❏ शंका समाधान... 22
❏ विश्व संगठन.... 24
❏ वर्तमान समय.... 26

सत्यार्थप्रकाश
प्रचार संस्करण – ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

ऋषि दयानन्दकृत वेदभाष्य की विशेषताएं

(श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, काशी, अध्यक्ष, वेद-सम्मेलन मेरठ)

ऋषि की सबसे बड़ी देन-

ऋषि दयानन्द की सबसे बड़ी देन संसार को यही है कि उन्होंने वेद शास्त्र का शुद्ध स्वरूप संसार के सामने रखा और साथ ही सब से कठिन समझे जाने वाले वेद को उन्होंने सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए उनका अर्थ आर्यभाषा में भी किया। इतना ही नहीं, व्याकरण जैसे दुरूह विषय को भी उन्होंने आर्य भाषा में लिखा। अष्टाध्यायी के भाष्य की रचना भी संस्कृत और आर्यभाषा दोनों में की। सन्ध्या के अर्थ तथा व्याख्या-संस्कारविधि की सब विधियाँ आर्यभाषा में लिख दीं। ऋषि दयानन्द का यह साहसपूर्ण कार्य भारत के इतिहास में चिरस्थायी रहेगा। पहले पहल तो लोगों ने ऋषि दयानन्द की हसी उड़ाई कि 'उन्होंने हिन्दी में लिखा है।" आर्य समाज के बहुत से पुराने विद्वानों ने ऋषि के आर्यभाषा में अपने ग्रन्थों के लिखने के महत्त्व को नहीं समझा। 'संस्कृत में ही रहना चाहिये। ऐसी ध्वनि कभी-कभी सुनाई देती रही। पर यह सब भ्रान्ति की बात थी। ऋषि से पहले वेद मन्त्रों के पढ़ने और उसके अर्थ करने के द्वार उस समय के पंडितों ने वैश्यों, क्षत्रियों तक के लिए बन्द कर रखा था, और स्त्रियों के लिए तो कहना ही क्या?

संसार को ऋषि दयानन्द की अपूर्व मेधा और तपश्चर्या का लोहा मानना पड़ेगा। अब भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर यह वेदध्वनि जब तक भारत के ग्राम-ग्राम में एक-एक पुत्र और पुत्री के मुख से न निकले, तब तक आर्यसमाज की आवश्यकता बनी रहेगी। सर्व-साधारण की वेद के प्रति आस्था हम तभी पैदा कर सकते हैं, जब अपने में, कार्य-कर्त्ताओं में, वेद के प्रति उत्कृष्ट भावनाएँ पूर्ण रीति से भरें। हम अपने में भरेंगे, तभी दूसरों में भर सकेंगे।

अब हम ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य की कुछ मौलिक विशेषताओं का वर्णन करते हैं :-

1. ऋषि दयानन्द का वेदभाष्य वेदापौरुषेयत्ववाद पर आधारित है, इसलिये इसमें कहीं भी इस धारणा के विरुद्ध इतिहासादि तथा अज्ञानमूलक जादू टोने की गन्ध भी उपलब्ध नहीं होती। यद्यपि सायण ने भी तत्तद् वेदभाष्य की भूमिका में वेदापौरूषयेत्ववाद का समर्थन किया है, तथापि वह उसको निभाने में सर्वथा असमर्थ रहा है, यह उस के वेदभाष्य से हस्तामलकवत् स्पष्ट है।

2. वेद के समस्त सुबन्त पदों को धातुज मान कर जैसे कि यास्क और पतंजलिका सिद्धान्त है प्रकरणादि के अनुसार उनके सभी संभव अर्थों का निरूपण किया गया है। इसलिये निर्वचन भेद से होने वाले विभिन्न अर्थों का भी इस में निरूपण मिलता है।

3. धातुओं के अनेकार्थत्व के सिद्धान्त को (जो सभी वैय्याकरणों तथा भाष्यकारों का मुख्य सिद्धान्त है) मान कर नाम आख्यात पदों के प्रकरणानुकूल अनेक अर्थ दर्शाए हैं।

4. वेद के अनेक पदों का अर्थ वेदमन्त्रों के ही आधार पर भी दर्शाया है यथा यजुर्वेद 1/13

5. अग्नि शब्द से केवल भौतिक-अग्नि का ही ग्रहण नहीं होता, अपितु उसके निर्वचन के आधार पर आध्यात्मिक आधिदैविक आदि प्रक्रियाओं में परमेश्वर-विद्वान्, राजा, सभाध्यक्ष, नेता, विद्युत प्रकाशक, जाठराग्नि तथा भौतिकाग्नि आदि अनेक अर्थ होते हैं। इसी प्रकार वायु, इन्द्र, आदित्य, यम-रूद्र आदि सभी पदों के विषय में समझना चाहिये कि ये इन्द्र-अग्नि-मरुत्-वायु मित्रादि शब्द जहाँ भौतिक पदार्थों के वाचक हैं, वहाँ मुख्य वृत्ति से ये ईश्वर के ही वाचक

शेष पृष्ठ 18 पर

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'— महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश— सब मनुष्य ऐसी इच्छा करें कि हमारी प्रज्ञा विद्वानों के संग से बढ़े और सरल व्यवहार करने वाले विद्यादाता विद्वानों से विद्या प्राप्त करें और वे ब्रह्मचर्य-शिक्षा से हमारी आयु बढ़ायें।

प्रजापतिः ऋषिः। विद्वांसः देवता। जगती छन्दः। निषादः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह।।

मनुष्य किस की इच्छा करे, यह फिर उपदेश किया है।

ओ३म्— देवाना भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांꣳरातिरभि नो निवर्त्तताम्।
देवानांꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे।। (यजु. ३५/१५)

पदार्थः —(देवानाम्) विदुषाम् (भद्रा) कल्याणकरी (सुमतिः) शोभनाप्रज्ञा (ऋजूयताम्) सरली कुर्वताम् (देवानाम्) दातृणाम् (रातिः) विद्यादिदानम् (अभि) सर्वतः (नः) अस्मान् (नि) (वर्त्तताम्) (देवानाम्) विदुषाम् (सख्यम्) मित्रत्वम् (उप) (सेदिम) प्राप्नुयाम (आ) (वयम्) (देवाः) विद्वांसः (नः) अस्माकम् (आयुः) प्राणधारणम् (प्र) (तिरन्तु) पूर्णं भोजयन्तु (जीवसे) जीवितुम्।

सपदार्थान्वयः —हे मनुष्याः यथा (देवानाम्) विदुषाम् (भद्रा) कल्याणकरी (सुमतिः) शोभनाप्रज्ञा अस्मान् (ऋजूयताम्) सरली कुर्वताम् (देवानाम्) दातृणाम् (रातिः) विद्यादि दानं (नः) अस्मान् (अभि) (निवर्त्तताम्) सर्वतः निवर्तताम् वयं (देवानाम्) विदुषाम् (सख्यम्) मित्रत्वम् (उप) (आ) (सेदिम) प्राप्नुयाम (देवाः) विद्वांसः (नः) अस्माकम् (जीवसे) जीवितुम् (आयुः)। प्राणधारणम् (प्रतिरन्तु) पूर्णं भोजयन्तु, तथायुष्मान् प्रतिवर्त्तन्ताम्।

भाषार्थ :—हे मनुष्यो! जैसे **(देवानाम्)** विद्वानों की **(भद्रा)** कल्याणकारी **(सुमतिः)** उत्तम प्रज्ञा **(नः)** हमें प्राप्त हो, और **(ऋजूयताम्)** सरल व्यवहार करने वाले **(देवानाम्)** दाता विद्वानों का **(रातिः)** विद्या आदि दान **(नः)** हमें **(अभि)(निवर्तताम्)** सब ओर से प्राप्त हो, हम **(देवानाम्)** विद्वानों की **(सख्यम्)** मित्रता को **(उपसेदिम)** प्राप्त करें। **(देवाः)** विद्वान् लोग **(नः)** हमारे **(जीवसे)** जीवन के लिए **(आयुः)** आयु को **(प्रतिरन्तु)** पूर्ण भोगें, वैसा तुम्हारे प्रति वर्ताव करें।

भावार्थः — सर्वैर्मनुष्यैराप्तानां विदुषां सकाशात् प्रज्ञाः प्राप्य ब्रह्मचर्येणायुः संवर्ध्य सदैव धार्मिकैः सह मित्रता रक्षणीया

भावार्थः — सब मनुष्य आप्त विद्वानों से प्रज्ञा को प्राप्त करके ब्रह्मचर्य से आयु को बढ़ा कर धार्मिकों के साथ मित्रता रखें। ☐☐

(''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत,
व्याख्याता—स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव)

आर्यसमाज स्थापना दिवस

(ओमप्रकाश शास्त्री, मो. 09416988351)

आज से 140 वर्ष पूर्व आर्यसमाज की स्थापना मुम्बई में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा की गई। 10 अप्रैल 1875 को शान्ति और क्रान्ति के प्रतीक आर्यसमाज का समाज से भ्रान्ति के अँधेरों को मिटाने के लिए और वेद के पावन प्रकाश को फैलाकर दुनिया में सुख-शान्ति के मार्ग को आलोकित करने के लिए अभ्युदय हुआ। आर्यसमाज का इतिहास अर्पण और समर्पण का रहा है। आर्यसमाज ने आन्तरिक और बाह्य चुनौतियों का जिस सफलता के साथ सामना किया वो इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। चाहे राजनीतिक क्षेत्र हो, चाहे धार्मिक क्षेत्र हो, चाहे अन्य कोई क्षेत्र हो उन सबमें से विसंगतियों को, विडम्बनाओं और विषमताओं को समूल नष्ट करने में आर्यसमाज ने अपना अविस्मरणीय योगदान दिया है। हिन्दूजाति जब विदेशी आक्रान्ताओं के अमानवीय अत्याचारों से आक्रान्त थी, जब हिन्दू जाति अपनी प्राचीन परम्पराओं ओर आस्थाओं पर ईसाई ओर मुसलमानों के व्यंग्यबाणों को झेल रही थी; जब हिन्दूजाति ईसाई, मुसलमानों के चंगुल में फंसती जा रही थी, तब ऐसे घोर संकट के समय में आर्यसमाज ने विधर्मियों के अत्याचारों को न केवल मुँहतोड़ जवाब दिया अपितु मृतप्रायः हो चुकी हिन्दूजाति में प्राण फूँकने का भी काम किया। सामाजिक असमानता, राजनीतिक परतन्त्रता तथा धार्मिक पाखण्ड को मिटाने का संकल्प लेकर ऋषि दयानन्द जिस क्रान्ति के पथ चले थे, आर्यसमाज भी उस पथ का पथिक बना हुआ है। पाखण्डों, आडम्बरों के मकड़ जाल में फँसे विश्वसमुदाय को यदि कोई सही मार्ग दिखा सकता है, तो वह है केवल और केवल आर्यसमाज। धर्म का कार्यक्षेत्र जो केवल कर्मकाण्ड तक सीमित हो गया था तथा जिसकी बुनियाद केवल पुराणों की कल्पित कहानियों पर टिकी थी उसको यदि व्यापकता किसी ने प्रदान की है, तो उसका नाम है आर्यसमाज। आर्यों के जिस परम धर्म का ऋषि ने आर्यसमाज के तीसरे नियम में उल्लेख किया है- "वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है" का आर्यसमाज अभ्युदर काल से आज तक पालन करता चला आ रहा है तथा छठे नियम में आर्यसमाज के जिन तीन प्रमुख उद्देश्यों का ऋषि जी ने उल्लेख किया है उनके प्रति भी आर्यसमाज आज तक प्रतिबद्ध है। आर्यसमाज के तीन उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए महर्षि जी लिखते हैं "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। आर्यसमाज ने शिविरों/सत्रों के द्वारा समाज के युवाओं की शारीरिक और आत्मिक उन्नति में अपना मुख्य योगदान किया है और आज भी युवाओं के चरित्र निर्माण के लिए प्रयासरत है। सामाजिक विषमताओं जैसे-बाल-विवाह, पर्दाप्रथा, दहेज-प्रथा, सती-प्रथा, स्त्री और शूद्रों के अधिकार हनन इत्यादि अनेकों ऐसी कुप्रथाएं थीं जिनसे हमारा समाज दुर्बल और खोखला होता जा रहा था, लेकिन उपरोक्त समस्याओं का आर्यसमाज ने डटकर सामना किया। आर्यसमाज ने पूरे विश्व में एकता का, समानता का, स्वतन्त्रता का प्रचार किया। संस्कृति के चार अध्याय में राष्ट्र कवि श्री रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं....जब 1921 में मोपला (मालाबार) में मुसलमानों द्वारा विद्रोह कर पड़ोस के हिन्दुओं का जबरन धर्मपरिवर्तन हो रहा था, तो आर्यसमाज ने इस संकट का सीना खोलकर सामना किया और लगभग ढाई हजार परिवारों को फिर से हिन्दू बनाया। इसके बाद आर्यसमाजियों ने राजस्थान में मलकाना राजपूतों की शुद्धि आरम्भ की। इसके बाद 1937 में आर्यसमाजियों ने फिर साहस का परिचय दिया, जब हैदराबाद राज्य का निजाम आर्यसमाज

का प्रचार नहीं होने दे रहा था। आर्यसमाज हिन्दूत्व की खड्गधार बाँह साबित हुआ। सच पूछिए तो उत्तर भारत में हिन्दुओं को जगाकर उन्हें प्रगतिशील करने का समस्त श्रेय आर्यसमाज को ही है।" पं० चमूपति एम.ए. सत्य ही कहा करते थे- "आर्यसमाज के जन्म के समय हिन्दू कोरा फुसफुसिया जीव था, उसके मेरुदण्ड की हड्डी थी ही नहीं। चाहे उसे कोई गाली दे, उसकी हँसी उड़ाये, उसके देवताओं की भर्त्सना करे या उसके धर्म पर कीचड़ उछाले, फिर भी इन सारे अपमानों के सामने वह दाँत निपोरकर रह जाता था, किन्तु आर्यसमाज के उदय के बाद, अविचल उदासीनता की यह मनोवृत्ति विदा हो गयी। हिन्दुओं का धर्म एक बार फिर जगमगा उठा है। आज हिन्दू अपने की निन्दा सुनकर चुप नहीं रह सकता। जरूरत हुई तो धर्मरक्षार्थ वह अपने प्राण भी दे सकता है।'' पञ्जाब केसरी लाला लाजपत राय ने आर्यसमाज को अपनी माँ कहा है। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस हों, सरदार भगत सिंह हों, रामप्रसाद बिस्मिल हों इसी प्रकार असंख्य क्रान्तिकारी युवाओं ने आर्यसमाज से बलिदान की प्रेरणा पाकर अपना जीवन और जवानी को देश के स्वतन्त्रता के महायज्ञ में आहुति बना दिया। आर्यसमाज के आचार्यों ने, आर्यसमाज के विद्वानों ने, आर्यसमाज के संन्यासियों ने, आर्यसमाज के शिक्षकों ने, आर्यसमाज के प्रचारको ने, क्रान्तिकारियों ने, लेखकों ने, कवियों ने, "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" अर्थात् सारे संसार को आर्य बनाओ" इस अभियान को आगे बढ़ाने में अपना अविस्मरणीय योगदान दिया है। आर्यसमाज द्वारा प्राणीमात्र के कल्याण में सार्वभौमिक योगदान की विदेशियों ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। डाक्टर एण्ड्रयू जैकसन डेविस लिखते हैं "मैं भारत वर्ष में एक ऐसी अग्नि को देखता हूँ जो सर्वविद्वेषों को भस्मसात करने के लिए प्रज्वलित हुई है।'' आर्यसमाज रूपी यह ज्वाला विश्वभर में व्यापक हो संसार भर से राज्यों, साम्राज्यों और शासन सम्बन्धी दोषों का सामना करेगी। महर्षि दयानन्द जी द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने विश्व के इतिहास में स्वर्णिम और अविस्मरणीय अध्याय जोड़ा है तो यह अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द, अमर बलिदानी पं० लेखराम जी, महात्मा हंसराज राज, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, लाला लाजपत राय, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, महात्मा नारायण स्वामी, महाशय राजपाल, पं० चमूपति एम.ए., पं० रामचन्द्र देहलवी, पं० मनसाराम वैदिक तोप जी, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द) और स्वामी आत्मानन्द जैसे त्यागी, तपस्वी, संन्यासियों के भागीरथ प्रयासों के कारण जुड़ा है। आओ आर्यसमाज की स्थापना के ऐतिहासिक दिन को हम सब मिलकर विश्व प्रेरणा दिवस बनाने का संकल्प लें। हमारे ऋषियों ने, हमारे महर्षियों ने, हमारे संन्यासियों ने, आचार्यों ने, मार्गदर्शकों ने पितरों (पूर्वजों) ने, महापुरुषों ने जिस समृद्ध समाज की कल्पना की, जिस प्रकार आर्य राष्ट्र का सपना देखा; न केवल सपना देखा, अपितु उस सपने का साकार करने के लिए अपने जीवन को साधना की भट्टी में झौंक दिया। आओ, हम सब मिलकर उनकी कल्पना का सुन्दर समाज बनाएँ, आओ हम सब मिलकर उनके सपनों का आर्यराष्ट्र बनाएँ। आज भी समाज पाखण्डों से, अन्धविश्वासों से और तरह-तरह की कुप्रथाओं से पीड़ित है। आज भी सांस्कृतिक, आध्यात्मिक विरासत पर पाश्चात्य सभ्यता की काली छाया का खतरा मंडरा रहा है। आज भी हमारी आस्था को दृढ़ता की आवश्यकता है। यह निर्विवाद सत्य है कि टूटे समाज को जोड़ने का काम, आहत समाज को राहत देने का काम, देश के युवावर्ग को सुपथ पर लाने का काम समाज में व्याप्त कुरीतियों को मिटाने का काम, अन्धविश्वासों को भगाने का काम, देश की एकता और अखण्डता को सुदृढ़ करने का काम, वेद-ज्योति जलाने का काम और समाजरूपी बगिया को वेद की पावन सुरभि से महकाने का काम केवल और केवल आर्यसमाज ही कर सकता है। ....

गोवध-प्रतिबन्ध-कानून पर बहस बेबुनियाद

(धर्मपाल आर्य)

हरियाणा में वहाँ की राज्य सरकार ने गोवध पर कानूनी रूप से पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया है, जो कि एक प्रशंसनीय कदम है। अब समाज का दायित्व बनता है कि सरकार द्वारा बनाए कानून का पालन करने में और करवाने में सरकार को सहयोग देने के अपने दायित्व को पूरी निष्ठा से निभाए। उपरोक्त कानून के आने पर उसके पक्ष-विपक्ष में तर्क और कुतर्कों का होना स्वाभाविक है लेकिन सम्प्रदाय, मत, मजहब की दलदल में फंस कर व्यक्ति इतना संवेदनहीन बन जायेगा, इसकी कम से कम मैंने तो कल्पना नहीं की थी। उपरोक्त संवेदनहीनता का शर्मनाक नजारा मुझे देखने को तब मिला, जब पिछले माह (15 मार्च) रविवार को शाम के लगभग 6 बजे ए.बी.पी. समाचार चैनल पर "गोवध प्रतिबन्ध पर विवाद क्यों" इस विषय पर बहस चल रही थी। साम्प्रदायिकता का, गन्दी राजनीति का गन्दा नकाब ओढ़कर व्यक्ति कितने ओछे और बेतुके तर्क दे सकता है, इसका स्पष्ट उदाहरण उस बहस में देखने को मिला। बहस में कांग्रेस से श्री शहजादा पूनावाला, विश्व हिन्दू परिषद् से श्री विनोद बंसल, भाजपा से श्री सुधांशु त्रिवेदी, ईसाई मत के चिन्तक श्री जॉन दयाल तथा गोमाँस कारोबारी हाजी मुहम्मद अली प्रमुख रूप से शामिल थे। कांग्रेस के शहजादा पूनावाला, जॉन दयाल और हाजी मुहम्मद तो इस तरह बातें कर रहे थे, मानो धार्मिक स्वतन्त्रता केवल ईसाई और मुसलमानों की बपौती है तथा इस देश में किसी और का न तो धार्मिक वजूद है और न किसी का कोई रीति-रिवाज है और न ही कोई आस्था। ईसाई-मुसलमानों के मजहबी ग्रन्थों (कुरान, बाईबिल) को छोड़कर और किसी का इस देश में कोई धर्मग्रन्थ नहीं है। ईसाई-मुसलमानों के उपासना स्थल, मस्जिद, गिरजाघर को छोड़कर अन्य किसी के पूजास्थलों का कोई अस्तित्व नहीं है। सबसे अधिक हैरानी मुझे तब हुई, जब कांग्रेस के शहजादा पूनावाला ने मनुस्मृति, अथर्ववेद और ऋग्वेद का हवाला देकर माँसाहार का समर्थन करने का असफल प्रयास किया। मैंने मनुस्मृति को पढ़ा है, मैंने ऋग्वेद और अथर्ववेद को भी पढ़ा है लेकिन न तो मनुस्मृति के कसी श्लोक में और न ही चारों वेदों के किसी भी मन्त्र में माँसाहार का समर्थन है अपितु यजुर्वेद में यजमान के पशुओं की रक्षा का स्पष्ट आदेश मिलता है "यजमानस्य पशून् पाहि" अर्थात् यजमान के पशुओं की रक्षा करो। यजमान कौन और उसके पशु कौन? इस विषय में वेदों के अनुसार राजा भी यजमान है, गृहस्थी भी यजमान है, आत्मा भी यजमान है। राजा के पशु उसके गुप्तचर उसके मन्त्री और उसके सलाहकार हैं, गृहस्थी के पशु उसके गाय, घोड़े और बैल आदि हैं। आत्मा के पशु उसकी इन्द्रियाँ हैं। ऋग्वेद में मन्त्र का सन्देश है कि "गोभिःष्यामो यशसो जनेषु" अर्थात् हम गऊवों द्वारा समाज में यश को प्राप्त करें। वेद में ही एक जगह लिखा है कि "गावो विश्वस्य मातरः" अर्थात् गाय विश्व की माता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती की गोकरुणानिधि नाम की लघु पुस्तिका है जिसमें ऋषि ने गाय के महत्व पर उसके दुग्ध, घी, मक्खन, गोबर और मूत्र के महत्व पर विस्तार से वैज्ञानिक विवेचन किया है। महात्मा गाँधी ने गाय को करूणा की कविता कहा है। इस सबके बावजूद पूनावाला ने न जाने किस आधार पर दावा कर डाला कि वेदों में और मनुस्मृति में माँसाहार का विधान है। अवश्य ही पूनावाला बहुत बड़े भ्रम का शिकार हैं, क्योंकि केवल "माष" शब्द को पढ़कर यह अनुमान लगाना कि वेद में माँसाहार का नियम है,

केवल अज्ञानता का ही परिचायक है। यह अनुमान न केवल संकुचित मानसिकता का द्योतक है, अपितु वैदिक-संस्कृति पर कीचड़ उछालने की अनधिकार चेष्टा भी है। पूनावाला की भाँति बड़े-बड़े हिन्दू पण्डित भी इस भ्रम के शिकार होते रहे हैं। इस प्रसङ्ग में मुझे अपने जीवन का एक रोचक व सत्य प्रसङ्ग याद आ रहा है, उसे पाठकों के समक्ष रखना प्रासङ्गिक समझता हूँ।

हमारे एक रिश्तेदार थे, श्री लाला राधाकृष्ण जी। वृन्दावनवासी बड़े धार्मिक, कर्मकाण्डी और पूजापाठ वाले व्यक्ति थे। हर माह घर पर कोई न कोई अनुष्ठान वे करवाते रहते थे। यदि मैं भूल नहीं कर रहा हूँ तो लाखों रुपये वर्ष में आप खर्च कर देते थे। मुझे एक बार उनके यहाँ जाने का अवसर मिला, वहाँ पौराणिक जगत् के विद्वान् पण्डित बैठे थे। संयोग से मांसाहार पर चर्चा चली, तो पौराणिक विद्वान् कह रहे थे कि राम माँस (माष) खाते थे, मैं इसका प्रमाण रामायण में दिखा सकता हूँ। लाला जी मेरे सामने पण्डितों के मुख से उपरोक्त बातें सुनकर लज्जित हो रहे थे, तो मुझे आश्चर्य हो रहा था। मैंने पण्डित जी से कहा कि रामायण तो मैंने भी पढ़ी है, आज तक मुझे तो कोई ऐसा श्लोक नहीं मिला, जो श्री राम द्वारा माँसाहार किए जाने की पुष्टि करता हो। पण्डित बोले मैं रामायण में प्रमाण दिखा सकता हूँ। हम दोनों अपने-अपने दावों पर अड़े हुए थे और लाला जी हम दोनों को ही अचरज भरी निगाहों से देख रहे थे, मैंने कहा महोदय! प्रमाण दिखाओ। पण्डित जी स्वाध्यायशील थे, तुरन्त रामायण लाये और वह प्रसङ्ग जिसमें तथाकथित "माष" लिखा था; निकाल लाए। मैंने कहा, बन्धुवर! यह माँस नहीं अपितु "माष" है और "माष" का अर्थ आप जानते हैं? पण्डित जी बोले नहीं। मैंने कहा "माष" का अर्थ है उड़द, राम उड़द खाते थे। मेरा यह कहना था कि लाला जी पण्डित जी पर बरसते हुए बोले, पण्डित जी! आपकी अब इसी में भलाई है कि बिना कहे-सुने आप अविलम्ब यहाँ से चले जाएँ। पण्डित जी लज्जा अनुभव करते हुए चले गये और लाला जी भावुक होकर मुझे गले लगाते हुए बोले, धर्मपाल! तुमने हमारे रामजी की लाज बचा ली। उपरोक्त वाक्य उन्होंने कई बार दोहराया। इसलिए मैं कहता हूँ कि बड़े बड़े धुरन्धर भ्रम के शिकार हो जाते हैं, फिर पूनावाला की तो कहानी ही क्या है? परन्तु फिर भी बिना सत्य तथ्य के किसी विषय पर वेद जैसी पावन विश्व-विरासत को प्रमाण रूप में प्रस्तुत करने की अनधिकार चेष्टा नहीं करनी चाहिए। माँस कारोबारी हाजी मुहम्द अली ने अपने कारोबार ठप्प होने तथा लाखों लोगों के बेरोजगार होने का एक अजीबोगरीब और हास्यास्पद सा तर्क दिया। जान दयाल ने अपनी निजी स्वतन्त्रता का हवाला देकर गोमाँस खाने का तर्क दिया। बहस का संचालन करने वाले संवाददाता विजय विद्रोही और देबांग भी परोक्ष रूप से गोमाँस कारोबारी, निजी स्वतन्त्रता की वकालत करने वालों के साथ दिखाई दिये। यद्यपि विश्व हिन्दू परिषद् के श्री विनोद व बीजेपी के सुधांशु त्रिवेदी ने अपने ढंग से इनकी दलीलों के जवाब दिये। किन्तु आखिर प्रश्न फिर यही कि गोवध-प्रतिबन्ध कानून पर इतना हो-हल्ला मचाने की आखिर क्या आवश्यकता है? पूर्व वित्तमंत्री और कांग्रेस के वरिष्ठ नेता पी० चिदम्बरम की टिप्पणी ने माँसाहार के समर्थन की हवा देकर अपने आपको एक दुर्भाग्यपूर्ण विषय से जोड़ने का प्रयास किया है। मानवीय संवेदनाओं को दरकिनार कर किस प्रकार गोवध प्रतिबन्ध कानून का स्वार्थी राजनेता और कुछ मजहबी ठेकेदार एकजुट होकर विरोध कर रहे हैं। उस दिन देखकर और सुनकर मुझे बड़ा दुःखद आश्चर्य हुआ। आओ हम सब मिलकर ऐसे स्वार्थी नेताओं और मजहबी ठेकेदारों का डटकर विरोध करें।

◻◻

सूर्य पर मनुष्य

(उत्तरा नेरुरर्कर)

कुछ दिन पहले, हरियाणा से पृथ्वी सिंह जी ने दूरवाणी पर बताया कि उनके आर्यसमाज में यह प्रश्न उठा कि सत्यार्थ-प्रकाश के आठवें समुल्लास में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो कहा है कि सूर्य पर भी मनुष्य आदि प्राणी पाए जाते हैं, और वहीं से पृथ्वी पर उनका आगमन हुआ है, यह आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष में कैसे सम्भव हो सकता है। चर्चा का निष्कर्ष न निकलने पर, उन्होंने मुझे इस विषय पर लेख लिखने का आग्रह किया। सो, यह लेख उनको दिए वचन को निभाते हुए, अपने अपूर्ण ज्ञान के आधार पर - जितना मैं अब तक समझ पाई हू, उसके अनुसार - लिख रही हूँ। आशा है उत्तरार्थियों को मेरे विश्लेषण से सन्तोष होगा।

यह विषय अवश्य ही जटिल है और इसमें संशय होना स्वाभाविक है। सो आरम्भ में हम महर्षि के वचनों को देखते हैं। सत्यार्थ-प्रकाश के अष्टम समुल्लास में प्रश्न उठता है-सूर्य, चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं? और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं?

महर्षि उत्तर देते हैं, "ये सब भूगोल लोक (हैं), और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती है।" क्योंकि -'**एतेषु हीदꣳ सर्वं वसु हितमेते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते; तद्यदिदं सर्वं वासयनते तस्माद् वसव इति।। शतपर्थु कां0 14/6/9/4।।**"-पृथिवी, जल,अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य- इनका 'वसु' नाम इसलिए है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा बसती है, और ये ही सबको बसाते हैं। जिसलिए वास के निवास करने के घर हैं, इसलिए इसका नाम 'वसु' है।

जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं, पश्चात इनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह है? और जैसे परमात्मा का यह छोटा सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है, तो क्या ये सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता। तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो, तो सफल कभी हो सकता है? इसलिए सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।"

यहाँ, और इसके आगे पीछे, मुझे यह तो विवरण नहीं प्राप्त हुआ कि मनुष्यादि सृष्टि सूर्य से पृथ्वी आदि पर अवतरित होती है, परन्तु हाँ, उपर्युक्त से यह तो स्पष्ट ही है कि सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आदि पर महर्षि ने मनुष्यादि सृष्टि का होना बताया है।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य का तापमान और गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक है कि वहाँ शरीर तो क्या, परमाणु भी छिन्न-भिन्नावस्था (केवल nucleus रूप) में रहते हैं। ऐसे में, वहाँ मनुष्यादि सृष्टि का होना सम्भव नहीं प्रतीत होता। चन्द्र पर गए हुए मानव को अनेक वर्ष हो गए और उसका पर्याप्त परीक्षण हो चुका है। वहाँ भी मनुष्यादि तो दूर, बैक्टीरिया और वाइरस भी नहीं प्राप्त हुए; बल्कि जल-जो कि जीवन के लिए अनिवार्य माना जाता है- वह भी न के बराबर है और जीवन के लिए अपर्याप्त है। इस विषय में, मंगल ग्रह से अभी भी हमें आशा है पर वह भी समय के साथ क्षीण होती जा रही है। सौर्यमण्डल में अन्य किसी ग्रह या उसके चन्द्र पर जीवन की कोई आशा की किरण नहीं ज़ान पड़ती। परन्तु, दूसरी ओर, किसी धूमकेतु पर जीवन के प्रारम्भिक अणु (amino-acids) प्राप्त हुए हैं। मेरा प्रश्न है कि यदि धूमकेतु पर ये मिल सकते हैं, तो ग्रहों और उनके चन्द्रों पर क्यों नहीं? क्योंकि धूमकेतु तो और अधिक ठण्डे और गर्म प्रदेश में जाते हैं। और यदि उन पर जल मिलता है, तो ग्रहों और उनके चन्द्रों पर क्यों सम्भव नहीं हो सकता? सूर्य के इतना निकट जाने से, धूमकेतु पर पाया जाने वाला जल तो जल्दी ही सूख जाना चाहिए? अब किसी वैज्ञानिक से तो मेरी इस विषय में चर्चा हुई नहीं, अतः उनके ऐसा मानने के कारण मुझे ज्ञात नहीं, तथापि, आधुनिक वैज्ञानिक मत उपर्युक्त प्रकार ही है और विभिन्न ग्रहों और चन्द्रों पर प्राणी उपलब्ध हों या न हों, सूर्य पर तो असम्भव ही है।

महर्षि के शब्दों को हम यदि ध्यान से पढ़ें, तो उन्होंने लिखा है - ''ये सब (सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र) भूगोल लोक हैं।' 'भूगोल' से हम पृथिवीलोक ही समझते हैं। परन्तु महर्षि का तात्पर्य है-ये सभी गोलाकार हैं, जो कि शत-प्रतिशत सही है ही-ऐसा हम आज प्रामाणिक रूप से जानते हैं। इसी प्रकार 'मनुष्यादि प्रजा' को समझने में भी हमें थोड़ी ढील बरतनी होगी।

अब हम देखते हैं। कि भारतीय परम्परा के अनुसार सूर्य में किसी का वास कहा गया है या नहीं? ऋग्वेद का एक मन्त्र है-

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरै।। ऋक्० 10/16/3।।

अर्थात् मरण समय पर, चक्षु सूर्य को जाए, अर्थात् शरीर के विभिन्न भाग अपने-अपने तत्व में विलीन हो जाते हैं। हे आत्मा! तू अपने धर्म (=कर्म) के अनुसार, वात (=वायुमय अन्तरिक्ष) को, द्युलोक (=सूर्य) को, पृथिवी वा जल को जाए (=जाती है) और यदि तेरा हित (=कर्मफल) उस प्रकार का हा, तो तू औषधियों (=पेड़-पौधों) के स्थावर शरीरों में रह। इस प्रकार परमात्मा ने, कर्मानुसार, जीवात्मा की चार गतियां दिखाई हैं-पृथिवी पर मनुष्य सहित अनेक जीव-जन्तु, वायु में पक्षी आदि और जल में मत्स्य आदि। परन्तु पुनः यहां द्युलोग आ गया, जिसकी प्रजा के बारे में हम कुछ नहीं जानते।

यहां प्रसांगानुसार यह भी बताया अनुकूल है कि ऐतरेयोपनिषद् में भी यही चार लोक बताए गए हैं -

स इमाँल्लोकानसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः। पृथिवी मरो या अधस्पत्ता आपः।।
ऐतरेय 1/2।।

उस (परमात्मा) ने उन लोकों को सृजा-अम्भ, मरीचि, मर और अप्। यह 'अम्भ' लोक द्यौ के आगे भी है और द्यौ (=आदित्य, तारागण) इसकी प्रतिष्ठा हैं (द्यौ और उसके आसपास का क्षेत्र 'अम्भ'=द्युलोक है)। अन्तरिक्ष 'मरीचियाँ' (=किरणें) हैं (मरीचि अन्तरिक्ष लोक है)। पृथिवी 'मर' है, और उससे नीचे 'अप्' है। पृथिवी को 'मर' इसलिए कहा गया है क्योंकि इसमें मनुष्य आदि प्रजा मरण-धर्मा हैं।

अब, मुण्डकोपनिषद् में सौरीप्रजा के विषय में एक उल्लेख मिलता है'

तपःश्रद्धे ये ह्यपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्या चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति।
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।
मुण्डक. 1/11।।

निश्चय से, जो शान्त (=जिनकी सब इच्छाएं शान्त हो गई हों) ज्ञानीजन वन में रहते हुए, भिक्षा से पेट-पालन करते हुए, संयम-रूपी तप और श्रद्धा से परिपूर्ण हो, (समाधि द्वारा परमात्मा के) पास वास करते हैं, वे विरक्त जन सूर्य के द्वार से वहां पहुंच जाते हैं, जहाँ वह अमृत पुरुष, अव्यय आत्मा (ब्रह्म रहता) है। अर्थात् मुक्तात्मा का परमात्मा से मिलन सूर्य में होता है।

वस्तुतः, मुक्तात्माओं और उनके सूर्य के वास के बारे में अन्य भी संकेत मिलते हैं। जिस दिव्यलोक का वर्णन आपने अन्य स्थानों पर पढ़ा होगा, वह सूर्य और उसके जैसे अन्य तारों का ही वर्णन है। वैसे तो वे मुक्तात्माएँ ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विचरने में स्वतन्त्र होती है। परन्तु सम्भवतः वे निवास आदित्यों पर करती हैं। ये दिव्य आत्माएँ 'देव' या 'देवता' भी कहाती हैं। वेद कहता है-

उद्वयन्तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्
ऋ. 1/50/10, यजु. 20/21, 27/10, 35/14, 38/24, अथर्व 7/53/7, छान्दोग्य० 3/17/8, अनेक ब्राह्मण, आरण्यक।।

अर्थात् ज्ञान की उत्तम ज्योति को चारों ओर से देखते हुए, अज्ञान के तम से हम ऊपर उठ जाएँ। उत्तम ज्योति वाला सूर्य, जो कि दिव्य है और देवों की रक्षा करने वाला है, वहाँ हम मुमुक्षु पहुंचे। यह अत्यन्त स्पष्ट संकेत है कि मोक्षप्राप्त करने वाले सूर्य पर वास करते हैं। इसीलिए सम्भवतः, यह मन्त्र इतनी बार और इतने

ग्रन्थों में प्राप्त होता है। (यद्यपि किञ्चित पाठ-भेद अवश्य है, किन्तु अर्थ यही निकलता है।)

आगे देखिए -

तिस्रो मातृस्त्रीन्पितृन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति।

मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम्।।

ऋक् 1/64/10,अथर्व. 9/9/10।।

इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध का अर्थ है कि विद्वान जन सूर्य के ऊपर विराजमान होकर उस सर्वत्र (परमेश्वर) की वाणी-जो सबको नहीं प्राप्त है- उसके विषय में गोपनीय वार्तालाप करते हैं। ये विद्वान मुक्तात्माएँ ही हैं। प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार अथर्ववेद के इस मन्त्र के अपने भाष्य में लिखते हैं 'सूर्य की पीठ पर मुक्तात्मा रहते हैं, और वहाँ रह कर वेदवाणी के सम्बन्ध में मन्त्रणा करते हैं। - यह वर्णन वेदानुमोदित होने से प्रामाणिक है। सूर्य यद्यपि अत्युष्ण है, परन्तु मुक्तात्मा तो, सूक्ष्य शरीर की अपेक्षा भी, अतिसूक्ष्म कारण शरीर में वास करते हैं। अतः उनके शरीरों के भस्मीभूत होने की सम्भावना नहीं होती। परमेश्वर की सत्ता भी आदित्य में कही है (यजु. 40/17)। वहाँ मुक्तात्माओं को परमेश्वर का संग भी मिलता है।'' यजु. 40/17 कहता है -''**योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म।**'' अर्थात् जो पुरुष आदित्य में प्राप्त होता है, वह मैं (परमात्मा) हूं, जिसके नाम हैं - ओ३म्, खम्, ब्रह्म। अवश्य ही परमात्मा सर्वत्र विद्यमान् हैं, परन्तु मुक्तात्मा को प्रमुखता से आदित्य पर प्राप्त होते हैं।

पुनः छान्दोग्योपनिषद् में स्पष्टतः लिखा है -

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूध्र्वमाक्रमते। स ओमिति वा होद्वा मीयते। स यावत् क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद् वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम्।। 8/6/5।।

अर्थात् जब यह आत्मा इस शरीर से निकलता है, तो (साधारण जीवों की आत्मा तो) अन्य रश्मियों (=नाड़ियों) से ऊपर को निकल जाता है। (परन्तु जो जीवन्मुक्त होता है) वह ओम् का उच्चारण करता है, निश्चय से, (सीधा सुषुम्णा नाड़ी से) ऊपर को निकलता है। जितने समय में मन पहुँचता है, उतने समय में वह आदित्य पहुँच जाता है। अवश्य ही, यह (ब्रह्म-) लोक का द्वार है, विद्वानों का मार्ग है, और अविद्वानों का इस मार्ग पर निरोध है। यहाँ पर अब कोई भी संशय नहीं रह जाता कि आदित्य ही मोक्षप्राप्तों का गन्तव्य है।

कुछ और बिन्दु यहाँ विचारणीय हैं। ज्ञान के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता। जो जन कहते हैं कि केवल अनन्य भक्ति से ही हम परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं, वे भोले हैं। ज्ञान की पराकाष्ठा है समाधि में आत्मसाक्षात्कार। इसी के अनन्तर जीवात्मा मोक्ष के लिए तैयार हो जाता है, जिसे जीवन्मुक्त दशा कहा जाता है। जिन्हें वे दुर्लभ दर्शन प्राप्त नहीं होते, वे ब्रह्मलोक के द्वार की झलक भी नहीं पाते। उस निरोध का मुख्य कारण है, आदित्य पर शरीर का सम्भव न होना और उन अज्ञ आत्माओं का शरीर में बन्धे रहना। दूसरे, यहाँ से ज्ञान और प्रकाश का भी सम्बन्ध समझ में आता है। जहाँ निम्न योनियों में पूर्ण अन्धकार होता है। (उनकी आँखें ही नहीं होतीं) बीच की योनियों को दिन में प्रकाश और रात्रि में अन्धकार मिलता है, वहाँ मुक्तात्माओं को सर्वदा प्रकाश मिलता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदित्य लोक पर अवश्य ही प्रजा है, परन्तु वह प्रजा मनुष्यादि प्राणियों की नहीं है, अपितु मुक्तात्माओं की है। ब्रह्माण्डके सारे तारे, हमारे सूर्य के समान, ब्रह्मलोक के द्वार हैं - वहाँ पर ब्रह्म का नित्य, साक्षात् और और निकट संग होता है। ये सब आत्माएं आपस में भी मन्त्रणा करती हैं, और परमानन्द में रहती हैं। यही है सूर्य के 'वसु' होने का रहस्य।

उत्तरा नेरूर्कर
9845057310

यह सामयिक चर्चा है, लेखिका ने अपनी ओर से विषय उठाया है, लेकिन सुधीजनों से अनुरोध है कि वे इस पर स्वस्थ चर्चाएँ खुले हृदय से लिखें। प्रयास करें कि भाषा का संयम बना रहे और निरर्थक व्यक्तिगत टिप्पणी/छींटाकशी करने से बचें। सम्पादक

लोकसेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है

(श्री पं० रामचन्द्र देहवली के एक भाषण का सार)

आजकल लोग ईश्वर की उपासना के लाभ पूछते हैं। मैं ऐसे लोगों के विश्वास के लिए यह मजमून रख रहा हूँ कि हमारे पास ईश्वर की उपासना का क्या अर्थ है। यदि आप किसी मुसलमान से यह प्रश्न करें, तो वह कहेगा कि हम खुदा की इबादत करते हैं। "इबद" का अर्थ बदा है अर्थात् वे अपने खुदा के सामने अपने बदा होने की प्रतिज्ञा करते हैं। और उससे शब्द बन्दगी निकला है। लोग आजकल प्रायः एक दूसरे की बन्दगी करते हैं। हिन्दू भी प्रायः ऐसा करते हैं। तो ऐसा कह कर अपने आपको गुलाम बनाया जाता है। इसलिये कम से कम हिन्दुओं को ऐसा शब्द नहीं कहना चाहिये। अब आप एक सनातनी से पूछें, वह कहेगा कि हम परामात्मा की भक्ति करते हैं। भक्ति का अर्थ सेवा है। परन्तु आर्य-समाज की उपासना का अर्थ है– परमात्मा के निकट होना। परमात्मा के नजदीक रहने का क्या मतलब है? इसके साथ ही मुसलमानों की इबादत और सनातनियों की भक्ति इन तीनों चीजों पर रोशनी डालूँगा।

मैंने एक बार दीनानगर के एक शास्त्रार्थ में मुसलमान भाई से पूछा कि आप बतलाएँ कि इस नमाज का क्या अर्थ है। इससे क्या लाभ है? उसने फरमाया कि हम खुदा का अदब बजा लाते हैं। मैंने उनसे पूछा कि क्या खुदा इससे प्रसन्न हो जायेगा, क्या वह बाह्य चीजों से प्रसन्न होता है या अभ्यान्तरिक भाव देखकर प्रसन्न होता है? यदि आन्तरिक भाव देखकर तो बाह्य दिखावट का क्या लाभ? इसके अतिरिक्त मैंने यह प्रश्न किया कि क्या सचमुच खुदा प्रसन्न होगा, यदि वह खुश होगा, तो उसमें तबदीली आ गई। आपने कुरानशरीफ की एक आयत पढ़ कर इस बात को दर्शाया कि खुदा ने अपने बन्दों को इबादत के लिए उत्पन्न किया। उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं इस लिए उस में तबदीली नहीं आती। तो फिर खुश करने का क्या अर्थ? वह भाई , उससे आगे न चल सका। अब आर्य-समाज की उपासना को लें। हम पर यह प्रश्न किया जाता है कि उसके समीप जाने का क्या अर्थ है? क्या परमात्मा दूर है, जो इसके निकट जाएँ। हमारा कहना यह है कि परमात्मा और जीव के अन्दर मकानी (दैशिक) या जमानी (कालिक) कोई फासला नहीं। मतलब यह है कि यदि हम परमात्मा के गुणों को अपने अन्दर धारण कर लें, तो हम उसके निकट चले जायेंगे। परमात्मा हर स्थान पर विद्यमान है। वह जीव के साथ रहता है। हम में और उसके मध्य इलमी फासला है। उदाहरण रूप में कई वस्तुएँ हमारे निकट होती हैं परन्तु हमें पता नहीं चलता। कई बार लेखनी कान में होती है, हम उसे मेज़ पर ढूँढते हैं। गाजियाबाद में एक बार मैंने अंधकार में अपना उपनेत्र (ऐनक) पगड़ी में रख दिया। जब ऐनक का ख्याल आया, तो हम इधर-उधर ढूँढते रहे। अन्त में सिर की पगड़ी में से मिल गई। मतलब यह कि यह इलमी भूल थी। परमात्मा जाहिलों (मूर्खों) से दूर है और आकिलों (बुद्धिमानों) के समीप है।

अब सनातनियों की भक्ति को लीजिए। मैंने एक भाई से पूछा कि सेवा के क्या अर्थ हैं, वह खिदमत के अर्थ न कर सका। मैंने कहा कि समय पर किसी मनुष्य की आवश्यकता को पूरा करना खिदमत कहलाता है अर्थात् आवश्यकता पूरी करना। अब आवश्यकता किसे कहते हैं? मुझे एक बार अध्यापक ने आवश्यकता का अर्थ बताया कि जिस वस्तु के बिना हमारा जरूर नुकसान हो, उसे जरूरत कहते हैं। अर्थात् जिस वस्तु के बिना हम रह नहीं सकते, वही जरूरत है। यदि हम जल न पिएं तो मर जाएँ। परन्तु क्या आपने इस बात पर

विचार किया है कि जिस ईश्वर की आप जरूरियात (आवश्यकताएँ) पूरी कर रहे हैं, उसकी आवश्यकताएँ क्या हैं? हम किसी को प्रसन्न करने के लिए सबसे प्रथम यह देखते हैं कि उसे किस वस्तु की आवश्यकता है। मैं एक मनुष्य के घर अभ्यागत रूप से जाता हूँ। वह मुझ से पूछता है कि आप क्या खायेंगे? वह पूछता है कि आप चाय पीयेंगे? मैं कहता हूँ कि चाय मैंने कभी नहीं पी। तब वह कहता है कि अच्छा दूध पीलो। मैंने कहा दूध रात को पीता हूँ, वह कहता है कि अच्छा पूरी खालो, रोटी खालो। मैं कहता हूँ कि अभी रोटी की जरूरत नहीं। गर्जेकि वह ऐसी चीज़ ढूँढना चाहता है, जिससे कि वह मुझे प्रसन्न करे। परन्तु कभी चूक भी हो जाती है। भाषा की गलतफहमी हो जाती है। और सेवा बेजा रीति से भी हो सकती है। एक बार लाला लाजपतराय जी गुजरात काठियाबाड़ में गये। वहाँ उन्हें एक सज्जन ने चाय पर बुलाया। चाय पेश की जब और देने लगे, तो लाला जी ने कहा कि काफी है। काफी का अर्थ यह है कि और नहीं चाहिए परन्तु उन्होंने उसको "पीने वाली" समझा। और वह काफी बनाकर लाला जी सामने ले आए। इस प्रकार बेजा तरीके पर भी खिद्मत हो सकती है। यदि एक रोगी को बादाम का हलवा खिला दिया जाय, तो यह उसकी सेवा नहीं है, बल्कि हानिकारक है। एक वृद्ध को यदि कठिन लड्डू दे दिये जाएँ, तो वह अप्रसन्न हो जाएगा। इसी प्रकार किसी का उदर भरा हुआ हो, उसे खाने के लिए दिया जाए और जो भूखा है, उसे न खिलाया जाय, यह भी एक गलती है।

मूर्ति को हलवा खिलाया जाता है किन्तु वह उस के होठों के आगे नहीं जाता, सब जानते हैं। देहली में स्त्रियाँ एक स्थान पर मूर्ति की पूजा करती हैं। वहाँ पर कई पदार्थ खाने के लिए पेश किये जाते हैं। एक बार मुझे उधर से गुजरने का अवसर मिला। देखा स्त्रियाँ मूर्ति के मुख पर हलवा लगा रही हैं। मैंने सोचा चलो इन्हें कुछ उपदेश ही दे चलें। मैंने मूर्ति के समीप जाकर देखा कि मूर्ति के होठों पर हलवा कई दिनों से चिमट कर सूख गया है और लकड़ी की तरह हो गया है। मैंने देवियों से कहा यह तो पहला हलवा भी नहीं खाती इसे और क्यों खिलाती हो देख लो यह कितने दिन का हलवा इस पर लगा हुआ है। देवियाँ देख कर हंस पड़ीं। मैंने कहा यह मूर्तियाँ कुछ नहीं खाती। यदि यह खाने लग जावे, तो सब से पहले उनका विरोध पुजारी ही करेंगे क्योंकि अगर मूर्तियाँ ही सभी कुछ खा जावें तो पुजारियों को क्या मिले।

परमात्मा पूर्ण है, उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, परन्तु फिर भी कोई लड्डू ले जा रहा है कोई फूल। ईश्वर पूर्ण है और प्रकृति जड़। जो चीज पूर्ण है वह किसी से कुछ नहीं चाहती वह दूसरों के लिये है प्रकृति न अपने सम्बन्ध में कुछ जानती है और न किसी और के विषय में, किन्तु ईश्वर अपने आप को भी जानता है और दूसरों को भी। एक ईश्वर पूर्ण है और दूसरी प्रकृति। न ईश्वर को किसी चीज की आवश्यकता है और न प्रकृति को। उन से कोई चीज ली जा सकती है, उन्हें दी नहीं जा सकती। आर्य-समाजी उपासना करना चाहता है। ईश्वर के समीप बैठना चाहता है इसलिए कि ईश्वर से कुछ लेकर उस की खिदमत करे। अब खिदमत किस तरह की जाती है। आप एक पण्डित जी के घर जाते हैं और एक हाथी का खिलौना भी उनके घर ले जाते हैं। आप पंडित जी के लड़के को वह हाथी देते हैं और कहते हैं कि लो बालक! इस पर सवारी करो। पण्डित जी बहुत प्रसन्न होंगे और आपका सत्कार करेंगे। परन्तु यदि वही हाथी आप लेकर पण्डित जी से कहें, पण्डित जी! यह है आप की सवारी के लिए, पण्डितजी अति क्रोध करेंगे। उनकी स्त्री अलग नाराज, बच्चा दूर-दूर। अब हाथी को दोनों अवस्थाओं में एक ही घर में रहना है, फिर कारण क्या

शेष पृष्ठ 12 पर

वेदों में नारी

(डॉ0 विवेक आर्य, मो-09310679090)

नारीजाति के विषय में वेदों को लेकर अनेक भ्रांतिया हैं। भारतीय समाज में वदों पर यह दोषारोपण किया जाता है कि वेदों के कारण नारी-जाति को सती प्रथा, बाल विवाह, देवदासीप्रथा, अशिक्षा, समाज में नीचा स्थान, विधवा का अभिशाप, नवजात कन्या की हत्या आदि अत्याचार हुए हैं। किसी द्वारा कभी यह प्रचलित कर दिया था कि जो नारी वेदमंत्र को सुन ले, तो उसके कानों में गर्म सीसा डाल देना चाहिए और जो वेदमंत्र को बोल दे, तो उसकी जिव्हा को अलग कर देना चाहिए। कोई नारी को पैर की जूती कहने में अपना बड़प्पन समझता था, तो कोई उसे ताड़न की अधिकारी बताने में बड़प्पन समझता था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि नारी की अपमानजनक स्थिति पश्चिम से लेकर पूर्व तक के सभी देशों के इतिहास में देखने को मिलती हैं। इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वेद इन अत्याचारों में से एक का भी समर्थन नहीं करते, अपितु वेदों में नारी को इतना उच्च स्थान प्राप्त है कि विश्व की किसी भी धर्मपुस्तक में उसका अंश भर भी देखने को नहीं मिलता। कुछ लेखकों द्वारा वेदों में भी नारी की स्थिति को निकृष्ट रूप में दर्शाया गया है।

शंका- वेदों में नारी के कर्तव्यों एवं अधिकारों के विषय में क्या कहा गया है?

समाधान- वेदों में नारी की स्थिति अत्यन्त गौरवास्पद वर्णित हुई है। वेद की नारी देवी हैं, विदुषी हैं, प्रकाश से परिपूर्ण हैं, वीरांगना हैं, वीरों की जननी हैं, आदर्श माता हैं, कर्तव्यनिष्ठ धर्मपत्नी हैं, सद्गृहणी हैं, साम्राज्ञी हैं, संतान की प्रथम शिक्षिका हैं, अध्यापिका बनकर कन्याओं को सदाचार और ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने वाली हैं, उपदेशिका बनकर सबको सन्मार्ग बताने वाली हैं, मर्यादाओं का पालन करने वाली हैं, जग में सत्य और प्रेम का प्रकाश फैलाने वाली हैं। यदि गुण-कर्मानुसार क्षत्राणी हैं, तो धनुर्विद्या में निष्णात होकर राष्ट्ररक्षा में भाग लेती हैं। यदि वैश्य के गुण कर्म हैं, तो उच्चकोटि की कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि में योगदान देती हैं और शिलपविद्या की भी उन्नति करती हैं। वेदों की नारी पूज्य हैं, स्तुति योग्य हैं, रमणीय हैं, आह्वान योग्य हैं, सुशील हैं, बहुश्रुत हैं, यशोमयी हैं।

पुरुष और नारी के संबंधों के विषय में वेदों में आलंकारिक वर्णन है। पुरुष द्युलोक हैं तो नारी पृथ्वी है। दोनों के सामंजस्य से ही सौरजगत बना हैं, पुरुष साम है, तो नारी ऋक् हैं दोनों के सामंजस्य से ही सृष्टि का सामगान होता है, पुरुष वीण-दंड है, तो नारी वीणातन्त्री है, दोनों के सामंजस्य से ही जीवन के संगीत की निःसृत झंकार होती है, पुरुष नदी का एक तट है, तो नारी दूसरा तट है, दोनों के बीच में वैयविक्त और समाजिक विकास की धारा बहती है। पुरुष अग्नि है, तो नारी ज्वाला है। पुरुष आदित्य है तो नारी प्रभा है। पुरुष तरु है, तो नारी लता है। परुष फूल है, तो नारी पंखुड़ी है। पुरुष धर्म है, तो नारी धीरता है। पुरुष सत्य है, तो नारी श्रद्धा है। पुरुष कर्म है, तो नारी विद्या है। पुरुष सत्व है, तो नारी सेवा है। पुरुष स्वाभिमान है, तो नारी क्षमा है। दोनों के सामंजस्य में ही पूर्णता है। विवाह इसी सामंजस्य का एक प्रतीक है। नारी का

पदार्पण जैसे ही विवाह-वेदी पर होता है, वैसे ही उसका कुल, व्रत, यज्ञ आदि सब कुछ बदल जता है। उसके नाम, काम, रिश्ते-नाते सब बदल जाते हैं। उसके दो कुल हो जाते हैं। एक पितृकुल और एक पति कुल। वह दोनों कुलों को जोड़ने वाली कड़ी हैं। पितृकुल में नारी कन्या, पुत्री, भगिनी, ननद, बुआ हैं तो पतिकुल में नारी वधु, गृहिणी, पत्नी, भार्या, जाया, दारा, जननी, अम्बा, माता, श्वश्रु हैं। वेदों में इन सभी दयित्वें के अनुरूप नारी के कर्तव्यों का विस्तार से वर्णन हैं। वैदिक मन्त्रों में नारी को उसके कर्तव्यों का पालन करने की प्रेरणा देते हुए महान बनने के प्रेरणा हैं।

शंका- स्वामी दयानंद के नारी जाति उत्थान के विष्य में क्या विचार हैं?

समाधान- स्वामी दयानन्द नारी जाति को न केवल शिक्षित करने के पक्षधर थे अपितु नारी जाति को गृह-स्वामिनी से लेकर प्राचीनकाल की महान विदुषी गार्गी और मैत्रयी के समान विदुषी बनाना चाहते थे। स्वामी जी के अनुसार नारी ताड़न योग्य नहीं अपितु सम्मान करने योग्य हैं। सत्यर्थ प्रकाश में स्वामी दयानंद क्रान्तिकारी उद्घोष करते हुए लिखते हैं "जन्म से पाचवे वर्ष तक के बालकों को माता तथा छः से आठवें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और नौवें के प्रारंभ में द्विज अपने संतानों का उपनयन करके जहाँ पूर्ण विद्वान् तथा विदुषी स्त्री, शिक्षा और विद्या दान करने वाले हो वहा लड़के तथा लड़कियों को भेज दें।

"लड़कों को लड़कों तथा लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें, लड़कों तथा लड़कियों की पाठशालाएँ एक-दूसरे से कम से कम दो कोस की दूरी पर हो।''

जो वहा अध्यापिका और अध्यापक अथवा भृत्य, अनुचर हों, वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री तथा पुरुषों की पाठशाला में सब पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पाच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पाच वर्ष की लड़की भी न जाने पाए।

जब तक वे ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकांत सेवन, भाषण, विषय-कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें।

इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रख सकें, पाठशाला में अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दंडनीय हो।

स्वामी दयानंद नारीशिक्षा के महत्व को यथार्थ में समझते थे क्यूंकि माता ही शिशु की प्रथम गुरु होती है, इसलिए नारी का शिक्षित होना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। स्वामी जी नारी शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे परन्तु सहशिक्षा के पक्षधर नहीं थे इसलिए उन्होंने लड़के लड़कियों की पाठशाला को न केवल अलग हेने का सन्देश दिया है अपितु उन्हें पढ़ाने वाले शिक्षकों के लिए भी यही नियम बनाया था कि केवल पुरुष अध्यापक लड़कों को पढ़ाए एवं स्त्री अध्यापिका लड़कियों को पढ़ाए। देखा जाये तो यह नियम समाज में होने वाले दुराचार, बलात्कार, शारीरिक शोषण, चरित्रहीनता आदि से युवक-युवतियों की रक्षा कर उन्हें राष्ट्र के लिए तैयार करने की दूरगामी सोच है। स्वामी जी दुराचार की भावना को मनुष्य के लिए विनाशकारी मानते थे, इसीलिए उनका मानना था कि अगर माता और पिता का चरित्र उज्जवल होगा, तभी संतान भी सुयोग्य एवं चरित्रवान होगी। स्वामी जी के चिंतन में सन्तान को अशिक्षित रखने वाले माता-पिता को राजा द्वारा दण्डित

शेष पृष्ठ 27 पर

करना प्रशंसनीय है क्यूंकि अगर देश की अगली पीढ़ी का विकास उचित प्रकार से होगा और उनकी नींव विधिवत रूप से रखी जाएगी, तभी वे समाज के लिए जिम्मेदार नागरिक बनेंगे। जिसकी नींव में ही दोष होगा, वह समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का कैसे निर्वाहन कर पायेगा। आज से 150 वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द के विचारों से देश में शिक्षा-चेतना का प्रचार हुआ जिसके कारण देश में हजारों शिक्षण संस्थाएं खुलीं, अनेक विद्यालय, गुरुकुल आदि प्रारम्भ हुए जिससे शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई। यह स्वामी दयानन्द के चिंतन का परिणाम था।

शंका- क्या वेद नारीजाति को शिक्षा का अधिकार देते हैं?

समाधान- स्वामी दयानंद ने “स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः”- स्त्री और शूद्र न पढ़े यह श्रुति है को नकारते हुए वैदिककाल की गार्गी, सुलभा, मैत्रयी, कात्यायनी आदि सुशिक्षित स्त्रियों का वर्णन किया जो ऋषि-मुनियों की शंकाओं का समाधान करती थीं। उनका प्रयास नारीजाति को शिक्षित, स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर बनाने का था, इसीलिए वे नारी को शिक्षा दिलवाने के पक्षधर थे। वेदों में नारी को शिक्षित करने के लिए अनेक मंत्र हैं। जैसे-

1. ऋग्वेद का भाष्य करते हुए स्वामी दयानंद लिखते हैं... राजा ऐसा यत्न करे जिससे सब बालक और कन्याएँ ब्रह्मचर्य से विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हों। सत्य, न्याय और धर्म का निरंतर सेवन करें।

2. राजा को प्रयत्नपूर्वक अपने राज्य में सब स्त्रियों को विदुषी बनाना चाहिए।- यजुर्वेद।

3. विद्वानों की यही योग्यता है कि सब कुमार और कुमारियों को पुन्दित बनावे, जिससे सब विद्या के फल को प्राप्त होकर सुमति हों- ऋग्वेद।

4. जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्या-अध्ययन करें और वे कुमारी ब्रह्मचारिणी उन विदुषियों से ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सबको विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें-ऋग्वेद।

इस प्रकार यजुर्वेद एवं ऋग्वेद में भी नारी को शिक्षा का अधिकार दिया गया है। इतने स्पष्ट प्रमाण होने के बाद भी मध्यकाल में नारीजाति को शिक्षा से वंचित रखना न केवल उन पर अत्याचार था, अपितु वेदों के ज्ञान से सामान्य समाज की अनभिज्ञता का प्रदर्शन भी था। ❑❑

पृष्ठ 9 का शेष

है कि बच्चे को देने पर पण्डित जी खुश पर जब उन्हें दिया गया तो नाराज।

लोकसेवा ही ईश्वर की खिदमत है। पण्डित को उस हाथी जरूरत नहीं किन्तु उस के लिए वह अत्यन्त हेय है परन्तु यदि उसे दिया, तो वह बड़ा नाराज होगा। क्या ईश्वर नाराज न होगा। यदि उसे किसी वस्तु की आवश्यकता न हो और दी जाय। यदि वही चीज उस के बच्चों को दी जाय, तो वह प्रसन्न होगा। और यह उस की सेवा है, भक्ति है। खिदमते खलक भी ईश्वर की उपासना और खिदमत है और अगर उस के बच्चों को लाभ पहुँचेगा, तो ईश्वर प्रसन्न होगा। अब आप सब शंका में पड़ जाएंगे कि यदि लोकसेवा ही ईश्वर की उपासना है, तो दो समय संध्या पढ़ने की क्या आवश्यकता है। इसके समबन्ध में आप को बतला दूँ कि दो समय संध्या पढ़ना जरूरी ही है। संध्या करना अपने आपको खलक की सेवा के लिए तैयार करना है। ❑❑

काश! ऐसा हो जाता! (2)

(राजेशार्य आट्टा, 1166, कच्चा किला, साढौरा, यमुनानगर, मो-09991291318)

प्रिय पाठकवृन्द! अपने आध्यात्मिक आचार्यों से हमने सुना है कि सभी हमारे अनुकूल आचरण करें, यह सम्भव नहीं है। क्योंकि सभी में हमारा मस्तिष्क नहीं है। यदि किसी विषय में हम अच्छे हैं और दूसरे बुरे हैं, तो अपने अच्छेपन पर घमण्ड और दूसरों से घृणा मत करो। तुम्हारे अच्छे होने में ईश्वर की कृपा काम कर रही है। अतः ईश्वर का धन्यवाद करो। हाँ, तुम्हारी योग्यता यही है कि तुमने अपने आपको ईश्वर की कृपा पाने का अधिकारी बनाया है।

इतिहास के भी किसी व्यक्ति से घृणा-द्वेष करने से कोई लाभ नहीं होगा। जुआ खेलकर युधिष्ठिर ने अधर्म का आचरण किया और उसका दण्ड भोगा। उस अपराध के कारण आज युधिष्ठिर को अधर्मराज कहकर घृणा प्रकट करने से युधिष्ठिर सुधर तो नहीं जाएगा और इतिहास बदल तो नहीं जाएगा। फिर भी वर्तमान व अतीत के बुरे कार्यों की आलोचना आवश्यक है। पीढ़ियों को यह पता होना चाहिए कि कौन व्यक्ति व कौन सा कार्य हमारे लिए आदर्श हो सकता है। यह ठीक है कि किसी एक अच्छी-बुरी घटना से किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। यह भी सत्य है कि व्यक्ति का प्रभाव क्षेत्र (पद आदि) उसके कार्य (अच्छे-बुरे) के प्रभाव को प्रभावित करता है। अतः ऊँची योग्यता वाले व्यक्ति को विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि उसे आदर्श मानकर चलने वाली पीढ़ियाँ उसके गलत कार्य का भी अनुकरण कर अपना तथा देश का विनाश कर बैठें।

महात्मा गाँधी ने कई महान नेताओं के मना करने पर भी मुसलमानों के खिलाफत आन्दोलन (जिसका भारत से कोई लेना देना नहीं था) का जोरदार समर्थन किया। उसमें असफल होने पर मुसलमानों ने अपना गुस्सा हिन्दुओं पर उतारा। केरल के मोपला मुसलमानों ने वहाँ के हिन्दुओं को बेरहमी से लूटा; उनके घरों को जलाया; उन्हें मुसलमान बनाया व मुसलमान न बनने वालों की गर्दन काटकर कुएँ भर दिये। उन भयावह समाचारों को सुनकर खिलाफत में गाँधी का समर्थन करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द व लाला लाजपतराय अपनी भूल पर पछताये और खिलाफत से अलग हो गये, जबकि गाँधी ने मोपलों की निन्दा करने की अपेक्षा उनकी काली करतूत को ढकने का प्रयास किया। यह देश के लिए अत्यन्त घातक मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति थी, जिसका आरम्भ गाँधी जी ने किया और मरते दम तक वे उसे बढ़ाते रहे। आजादी के बाद भी गाँधी के नामलेवा नेता उसी लकीर पर चलते रहे, पर मुस्लिम सन्तुष्ट नहीं हुए। काश! गाँधी ने मोपला-दंगों की निन्दा की होती और स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धि-आन्दोलन का विरोध न कर समर्थन किया होता, तो देश को आजादी मिलने तक बार-बार मुस्लिम-दंगों से घायल न होना पड़ता।

यदि गाँधी ने नेताजी सुभाष की जीत (1939 में दूसरी बार कांग्रेस का अध्यक्ष बनने) पर आँसू न बहाए होते, तो आजादी के बाद देश की राजनीति इतनी विषैली न होती।

यदि गाँधी क्रांतिकारी वीरों को आतंकवादी कहकर उनका विरोध न करते, तो स्वतंत्रता के बाद भी इतिहास की पुस्तकों में इतिहासकार उन्हें आतंकवादी लिखने की बेशरमी न दिखाते और कोई मुख्यमंत्री उन्हें आतंकवादी कहकर कुर्सी पर न रह पाती/पाता।

काश! गाँधी जी ने जिन्ना को भारत का प्रधानमंत्री बनवा दिया होता, तो लाखों लोगों का कत्लेआम और विस्थापन न होता। गाँधी अपने अनशन का प्रभाव दिखाते, तो भारत का मानचित्र यूँ कटा-फटा व लहूलुहान

न होता।

काश! गाँधी जी ने हठपूर्वक अनशन करके पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपये (जबकि पाकिस्तान ने भारत को 275 करोड़ रुपये देने थे) देने के लिए भारत सरकार को मजबूर न किया होता, तो नाथूराम गोडसे जैसा देशभक्त अहिंसा के पुजारी की हत्या कर कलंकित न होता।

इतिहास अतीत की घटना है, इसमें 'यदि' 'परन्तु' नहीं चलते, पर भविष्य में अतीत की भूलों से बचा तो जा सकता है। बचें तो तब, जब भूल मानें। दुर्भाग्य से पिछले 60-65 वर्षों से देश को ऐसा पाठ पढ़ाया जा रहा है कि राष्ट्रपिता कोई भूल कर ही नहीं सकता। अपने आदर्श को अलौकिक (सर्वज्ञ व पूर्णतः निर्भ्रान्त) मानना अन्धविश्वास है, जो मानव व राष्ट्र की प्रगति में बाधक है। धार्मिक विषय में भी यह उतना ही सत्य है, जितना राजनीति में।

स्वामी डॉ० सत्यप्रकाश जी ने लिखा है कि सिकन्दर शक, हूण आदि विदेशी आक्रमणों के कारण बहुत से विदेशी लोग भारत में आये और बाद में उनमें से कुछ भारत में ही रह गये। उन्होंने संस्कृत पढ़ी और अपने देश की मान्यताओं (फलित ज्योतिष, शकुन-अपशकुन, देवतावाद आदि) से सम्बन्धित रचनाएँ संस्कृत में लिखीं व रामायण महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलावट की, जिससे वैदिक साहित्य वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि के स्थान पर पौराणिक साहित्य व पौराणिक देवताओं का प्रचार होने लगा। बौद्धों के साथ हुए संघर्ष में प्रक्षेप किया गया। व्यास आदि ऋषि-महर्षियों के नाम से बने इन जाली ग्रन्थों (जिनमें असम्भव व अश्लील कथाओं की भरमार है) को भी 'ऋषि कभी गलत (असत्य) नहीं लिखते, इस श्रद्धा (अन्धविश्वास) से मान्यता देकर भारत के लोगों ने संस्कृत के अक्षर-अक्षर को प्रमाण मानने की भूल की। शताब्दियों से वह भूल हम ढो रहे हैं, क्योंकि भूल को भूल माना ही नहीं। तभी तो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि को अपना आराध्य मानने वाला हिन्दू समाज उन्हें व्यभिचारी, चरित्रहीन व पतित प्रचारित करने वाले ग्रन्थों की भी पूजा कर रहा है। ऐसे ही गीतों पर नाच रहा है।

शताब्दियों बाद इस पापाचार को देखकर किसी ऋषि का हृदय रोया और अपनी पीड़ा को आँसू में कलम डुबोकर यूँ व्यक्त किया- "शोक है इन लोगों की रची हुई इस महा असम्भव लीला पर, जिसने संसार को अभी तक भ्रमा रक्खा है। भला इन महा झूठ बातों को वे अंधे पोप और बाहर भीतर की फूटी आँखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई!!! इन भागवतादि पुराणों के बनानेहारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये? वा जन्मते समय मर क्यों न गये? क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त्त देश दुःखों से बच जाता।" (सत्यार्थप्रकाश)

नई स्मृतियों के परिणामस्वरूप कर्मणा वैदिक वर्ण-व्यवस्था के स्थान पर जन्मना वर्णव्यवस्था का प्रचलन हुआ। धीरे-धीरे विकृत हआ वैदिक समाज अपने जन्मना चार वर्णों तक भी सीमित न रहकर उपवर्णों, जातियों और उपजातियों में बँटता चला गया। इस्लाम के आगमन पर जातिप्रथा ने जो निर्दयी स्वरूप दिखाया, उसके मूल में ये तथाकथित स्मृतियाँ व धूर्त, स्वार्थी ब्राह्मणों की मूर्खता थी। हिन्दू धर्म में प्रवेश (शुद्धि) का द्वार बन्द कर इन तथाकथित ब्राह्मणों ने आत्महत्या का जो मार्ग चुना, उसी के परिणामस्वरूप देश कई सौ वर्षों तक गुलाम रहा, पर हमने पूर्वजों की भूल का सुधार नहीं किया, क्योंकि हमने उसे भूल माना ही नहीं।

धरती का स्वर्ग देवों (विद्वानों) की नगरी, संस्कृत विद्या का केन्द्र, ऋषियों की तपस्थली कश्मीर आज इस्लामिक राज्य बन चुका है। इस दुर्घटना की पृष्ठभूमि देखिये- लहरकोट (कश्मीर) के राजा रामचन्द्र और कश्मीर नरेश सूहदेव की आपसी अनबन का लाभ उठाकर भोट

सरदार रिंचन ने रामचन्द्र पर आक्रमण कर उसे मार डाला। तब सूहदेव चैन की बंशी बजाता रहा। रामचन्द्र की पत्नी कोटादेवी से विवाह कर रिंचन ने सूहदेव को भी ठिकाने लगा दिया और कश्मीर का शासक बन गया। हिन्दूधर्म से प्रभावित होकर रिंचन ने कश्मीर के तत्कालीन प्रसिद्ध शैव आचार्य देव से निवेदन किया कि उसे शैवमत की दीक्षा देने की कृपा करें। शैव आचार्य ने कहा- "राजन्! आप भोटिया हैं हिन्दू नहीं हैं, तब मैं आपको शैव-दीक्षा कैसे दे सकता हूँ। मैं विवश हूँ।"

रिंचन ने इसे अपना अपमान समझा और मुस्लिम अधिकारी शाहमेर के निवेदन पर इस्लाम स्वीकार कर लिया। रिंचन से मलिक सदरुद्दीन बना यह कश्मीर का पहला मुस्लिम राजा हुआ। उसके बेटे का नाम हैदर रखा गया। 1394 ई० में सिकन्दर (शायद रिंचन का पोता) कश्मीर की गद्दी पर बैठा। उसने इस्लाम का प्रचार करने के लिए हिन्दुओं को धर्मान्तरण, देशत्याग या मृत्यु में से एक चुनने को कहा। बाद के मुस्लिम शासकों ने भी ऐसे उपायों का प्रयोग किया। कश्मीर मुस्लिम बहुल बनता चला गया। 20 जून 1819 को महाराजा रणजीत सिंह की सहायता से तत्कालीन शासक आजम खाँ को भगाकर महाराजा गुलाब सिंह कश्मीर के राजा बने।

महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद कश्मीर पर अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ने लगा, तो महाराजा गुलाब सिंह ने 75 लाख रुपये अंग्रेजों को देकर पूरा जम्मू कश्मीर तथा लद्दाख अपने अधीन कर लिया। फिर से हिन्दुओं का मान-सम्मान बढ़ने लगा। महाराजा रणवीर सिंह (1857-1885) के समय पुंछ, राजौर और श्रीनगर के अनेक प्रमुख मुसलमानों ने उनके पास आकर निवेदन किया कि उन्हें फिर से हिन्दू बनने की अनुमति दी जाए। उनके पुरखे अपनी जान तथा बहू-बेटियों की लाज बचाने के लिए मजबूरी में मुसलमान बने थे; पर अन्तर्मन से वे हिन्दू ही रहे।'

यह सुनकर राजा को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने राज्य के पण्डितों से इस शुद्धि की बात की, तो वे बोले- "महाराज, जैसे दही को फिर से दूध नहीं बनाया जा सकता, ऐसे ही एक बार मुसलमान बन चुका व्यक्ति फिर हिन्दू नहीं हो सकता।"

राजा ने कठोर होकर कहा कि यदि तुम यह शुद्धि नहीं कराओगे, तो मैं काशी के विद्वानों को बुलाकर यह काम कराउँगा।' इस पर पण्डितों ने राजा को धमकी देते हुए कहा कि यदि आपने ऐसा किसा, तो हम सब डलझील में कूदकर प्राण त्याग देंगे और आपको ब्रह्महत्या का पाप लगेगा।

राजा ने भयभीत होकर हिन्दू बनने के इच्छुक उन मुसलमानों को बैरंग वापस लौटा दिया। काश! राजा उन मूर्ख पण्डितों के हाथ-पैर बाँधकर स्वयं ही डलझील में फेंक देता, तो आज कश्मीर की दुर्दशा न होती। आज कश्मीरी हिन्दू जिस दुर्दशा में देश के अनेक भागों में शरणार्थी बन कर रह रहे हैं, यह उनके पूर्वजों के पापों का ही फल है। क्या ऐसा ही फल उन या उनकी सन्तानों को नहीं भोगना पडेगा, जो आज भी सैकुलर बनकर केवल वोट के लालच में 'घर वापसी' (मुस्लिम का हिन्दू बनना) का विरोध कर रहे हैं?

कितने निर्दयी होंगे, वे मानवता, समाज व राष्ट्र के शत्रु, जिन्होंने जातिवाद व छुआछूत की ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी करके न केवल हिन्दू समाज के अंगों को परस्पर मिलने से रोका, अपितु उनमें परस्पर घृणा भी उत्पन्न की। कोई उनके धूर्ततापूर्ण कारनामों का विरोध न कर सके, इसलिए अन्य वर्गों को विद्या (संस्कृत) के अधिकार से भी वंचित कर दिया। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर द्वारा 1923 ई० में प्रकाशित 'मालाबार का हत्याकाण्ड' पुस्तक में केरल में प्रचलित हिन्दुओं की विनाशकारी प्रथा के विषय में लिखा है-

नम्बोदरी ब्राह्मण सबसे ऊँचे दर्जे के माने जाते हैं। उनसे नीचे नायर हैं। ब्राह्मण इन्हें शूद्र मानते हैं, जबकि

ये स्वयं को क्षत्रिय कहते हैं। ये ब्राह्मणों के मन्दिरों और तालाबों में नहीं जा सकते। तीया जाति को ब्राह्मण या नायर से 24 फुट के फासले पर रहने की आज्ञा है। मसकून को 24 फुट, कनीसन को 36 फुट, यलाबन को 64 फुट और नायाड़ी को 72 फुट दूरी पर खड़ा रखा जाता है। तीया जाति का एक डॉक्टर चोई किसी ब्राह्मण की माता का इलाज करने के लिए जाते समय ब्राह्मणों के तालाब के पास से गुजर गया, तो फरवरी 1919 में कालीकट में उन दोनों पर तालाब को अपवित्र करने का आरोप लगाकर मुकदमा कर दिया। मुकदमा 6 महीने चला। बहस में यह भी कहा गया कि एक ईसाई या मुसलमान के गुजरने से तालाब अपवित्र नहीं होता, हिन्दू के गुजरने से तालाब अपवित्र हो गया। यह कैसा दर्शन है!

तथाकथित जाति के अभिमानी हिन्दुओं के दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर कुछ वर्षों में 99 हजार चमारों में से लगभग 60 हजार मुसलमान या ईसाई हो चुके हैं (1923 ई०)। ऐसी अवस्था में अंग्रेजों की सहायता पाकर ऊँचा उठा कोई ई०वी० रामास्वामी नायकर (पेरियार), ज्योतिबा फूले या डॉ० अम्बेडकर यदि उन ग्रन्थों (जिनका प्रमाण देकर यह निर्दयता की जा रही थी) का मजाक उड़ाए, उन पर भद्दी टिप्पणी करे या उन्हें जला दे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यद्यपि यह उनके सामाजिक अधिकारों की लड़ाई थी, पर प्रतिक्रियास्वरूप उग्र होने और पीड़ितवर्ग का नेतृतव होने से उच्चवर्ग की मानसिकता नहीं बदल पाई। महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के प्रयत्न से इसकी दिशा बदली। मिथ्याभिमानी ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य वर्गों के व्यवहार में परिवर्तन आना शुरू हुआ, पर शताब्दियों का कूड़ा-कर्कट फूँक मारते ही तो नहीं उड़ जाता।

आर्यसमाज डॉ० अम्बेडकर के जन्म से पूर्व ही दलितोद्धार के कार्य में लग चुका था। अपने कई आर्यवीरों का बलिदान देकर भी वह निरन्तर बढ़ रहा था, पर जिस तथाकथित उच्चवर्ग ने दलितों के साथ दुव्यर्ववहार किया, उसने शायद कभी मनुस्मृति देखी भी नहीं होगी। फिर भी मनुस्मृति को डॉ. अम्बेडकर जैसे विचारशील व्यक्ति का कोपभाजन बनना पड़ा। 25 दिसम्बर 1927 को प्रक्षिप्त गन्दगी के कारण मनुस्मृति की अच्छाई भी जला दी गई। सम्भवतः भावावेश में किये गये इस कार्य के प्रायश्चितस्वरूप ही डॉ० अम्बेडकर ने 3 मार्च 1930 को नासिक के कालाराम मन्दिर में दलितों के प्रवेश के लिए आन्दोलन चलाया हो, पर ब्राह्मणों ने पुनः अपने पूर्वजों की गलती दोहराते हुए दलितों को अछूत कहकर मन्दिर-प्रवेश से मना कर दिया। अक्टूबर 1935 तक हर वर्ष सत्याग्रह करते हुए दलित मन्दिर की ओर जाते, पर तथाकथित द्विजों के दिल नहीं पसीजे। अंतिम बार तो महाड़ तालाब वाली घटना (मार्च 1927 में महाड़ की नगरपालिका ने सार्वजनिक तालाब बनवाया। जब दलित जानी लेने तालाब पर पहुँचे, तो उन पर आक्रमण कर दिया गया, जिससे बीस आदमी घायल हुए थे।) दोहरा दी। इससे क्षुब्ध होकर 13 अक्तूबर को डॉ० अम्बेडकर ने घोषणा की-

"दुर्भाग्य से मैं एक हिन्दू के रूप में पैदा हुआ, जिस पर मेरा कोई नियन्त्रण नहीं था, लेकिन यह निश्चित मेरे वश में है कि मैं हिन्दूधर्म के अन्तर्गत एक अपमानजनक और शर्मऩाक स्थिति में जीने से मना करूँ। मैं आपको आश्वासन देता हूँ कि मैं एक हिन्दू के रूप में नहीं मरूँगा।"

उनकी इस घोषणा से ईसाई-मुसलमानों के मुँह में पानी आ गया, पर हिन्दुओं को अपनी मूर्खता पर पश्चाताप नहीं हुआ। काश! जाति के अभिमानी हिन्दू अपने सहधर्मी भाइयों के साथ पशुतापूर्ण व्यवहार न करते, तो लगभग सात करोड़ दलित स्वतंत्रता-संग्राम में तटस्थ न रहते। यही नहीं, डॉ० अम्बेडकर साइमन कमीशन का सहयोग न करते; सविनय अवज्ञा आन्दोलन को अराजकता और भारत छोड़ो आन्दोलन को

गैर-जिम्मेदाराना पागलपन और राजनीतिक दिवालियापन कहकर अंग्रेजों का सहयोग न करते। यही नहीं, 14 अक्टूबर 1953 को 2 लाख दलितों के साथ डॉ० अम्बेडकर हिन्दूधर्म को त्यागकर बौद्ध न बनते। 1961 ई० में बौद्धों की जनसंख्या 3250227 न होती।

पर हम अपनी भूल का सुधार नहीं करते, क्योंकि उसे भूल मानते ही नहीं। तभी तो 'कल्याण' के 'हिन्दू संस्कृति' अंक (1950 ई०) के चतुर्थ संस्करण (1994 ई०) में भी अन्त्यजों (दलितों) के मन्दिर प्रवेश निपेध के समर्थन में लेख छपते हैं। जाति अभिमानियों की इस न बदलने वाली मानसिकता ने ही डॉ० अम्बेडकर को मनुस्मृति व मनु का ही नहीं, वेद आदि ग्रन्थों का भी विरोधी बना दिया। आर्यसमाज की सभी मान्यताओं से सहमत न होते हुए भी वे आर्यसमाज के विद्वानों का सम्मान करते थे, पर एक बार बन चुकी अपनी धारणा को वे नहीं बदल सके।

अप्रैल 1936 में लाहौर के जात-पाँत-तोड़क मण्डल द्वारा जातिप्रथा के विरुद्ध एक सम्मेलन किया जाना था। उसकी अध्यक्षता के लिए उन्होंने (भाई परमानन्द, महात्मा हंसराज, सन्तराम बी०ए०, डॉ० गोकुल चन्द नारंग आदि ने) डॉ० अम्बेडकर को आमंत्रित किया। डॉ० अम्बेडकर ने अपना जो अध्यक्षीय भाषण लिखा, उस पर मण्डल के सदस्यों की सहमति नहीं बन पाई। अतः सम्मेलन नहीं हो पाया। असहमति के ये कारण रहे-

1. मण्डल की इच्छा थी कि भाषण लाहौर में छपवाया जाए, जबकि डॉ० साहब मुम्बई में ही छपवाना चाहते थे। (एक हजार प्रतियाँ छपवाई थीं)

2. भाषण बहुत लम्बा (सामान्य आकार की छपी पुस्तक में 60 पृष्ठ) था। मण्डल छोटा करना चाहता था।

3. भाषण की कई बातों से मण्डल सहमत नहीं था और उन्हें हटाने का आग्रह कर रहा था-

(क) भाषण में कई बार यह कहा गया है कि मैंने हिन्दू समाज से अलग होने का निर्णय कर लिया है और एक हिन्दू के रूप में यह मेरा अंतिम भाषण है।

(ख) वेदों पर अनावश्यक प्रहार- "यदि आप जातिप्रथा में दरार डालना चाहते हैं तो इसके लिए आपको हर हालत में वेदों और शास्त्रों में डाइनामाइट लगाना होगा, क्योंकि वेद और शास्त्र किसी भी तर्क से अलग हटाते हैं और वेद तथा शास्त्र किसी भी नैतिकता से वंचित करते हैं। आपको 'श्रुति' और 'स्मृति' के धर्म को नष्ट करना ही चाहिए।"

(ग) हिन्दूधर्म का पूर्ण उन्मूलन करने की बात कही।

डॉ० अम्बेडकर ने किसी प्रकार के समझौते के लिए सहमत न होते हुए कहा- "मैं अल्पविराम तक परिवर्तित करने के लिए तैयार नहीं हूँ। मैं अपने भाषण पर किसी प्रकार के सेंसर की अनुमति नहीं दूँगा।" काश! डॉ. अम्बेडकर मण्डल की भावना का सम्मान कर पाते, तो आज उनका नाम लेकर दलितों के नेता बने लोग 'तिलक तराजू और तलवार को जूते मारने का नारा देकर समाज में विष न घोलते। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि डॉ० अम्बेडकर जीवन भर हिन्दू ही रहे, ईसाई या मुसलमान उन्हें अपने जाल में न फँसा सके। जीवन के मात्र 53 दिन वे बौद्ध (हिन्दू का अंग) रहे। वह भी शायद वचन निभाने के लिए ही बौद्ध बने हों। लगभग 21 वर्ष उन्होंने खूब चिन्तन किया। मुस्लिम या ईसाई बनने में अपनी और राष्ट्र की बहुत बड़ी हानि का विचार कर वे बौद्ध ही बने। अर्थात् उन्होंने राष्ट्रहित को आगे रखा। सोचें, उनके अनुयायी कहलाने वाले हम लोग क्या कर रहे हैं?

भाई परमानन्द ने लिखा है कि मनुष्य स्वयं न तो महान् है और न तुच्छ। परिस्थिति मानव का निर्माण करती है। आज यदि डॉ० अम्डेकर महान हैं, तो उन परिस्थितियों के कारण ही। यदि सामान्य परिस्थिति होती, तो संभवतः वे इतने नहीं निखर पाते। फिर भी

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भूलें महान लोगों से भी होती हैं। अम्बेडकरवादी बन्धुओं से निवेदन है कि आज हम 60 वर्ष आगे आ चुके हैं और परिस्थितियाँ बहुत बदल चुकी हैं। अब उस प्रकार का भेदभाव नहीं है; वेद पढ़ने की मनाही नहीं है। हम समय की गति के साथ अपनी चाल मिलाएँ। अपने पूर्वजों के साथ अतीत के लोगों द्वारा किये गये दुर्व्यवहार के कारण वर्तमान पीढ़ी से द्वेष करके हम समाज में शान्ति और उन्नति नहीं कर सकते।

ऊँची जाति के मिथ्याभिमानियों से निवेदन है कि जिन्हें समाज ने सदियों तक अछूत कहकर तिरस्कृत किया, फिर भी उन लोगों ने समाज की सेवा की। अपनों के अपमान से पीड़ित होकर मुसलमान या ईसाई नहीं बने। हमें उनके इस त्याग के आगे नतमस्तक होना चाहिए। सोचिये, आजादी के समय मुसलमानों के साथ यदि 7 करोड़ दलितों ने भी पाकिस्तान का समर्थन किया होता, तो भारत का क्या स्वरूप होता! इसीलिए श्री रूपनारायण पाण्डेय के शब्दों में कहना चाहता हूँ-

अपना ही अंग हैं ये अन्त्यज असंख्य,
इन्हें गले न लगाया तो अवश्य पछताओगे।
ममता के मंत्र से विषमता का विष जो,
उतारा नहीं, जाति को जीवित नहीं पाओगे।
पक्षाघात-पीड़ित समाज जो रहेगा पंगु,
उन्नति की दौड़ में कहाँ से जीत पाओगे।
साधना सुराज्य की सफल कभी होगी नहीं,
अगर अछूतों को न आप अपना बनाओगे।।

□□

पृष्ठ 2 का शेष

हैं। यह इस भाष्य की सब से बड़ी विशेषता है, इसी के आधार पर इस भाष्य का वास्तविक रहस्य समझा जा सकता है।

ऋषि दयानन्द की इस प्रक्रिया पर उनके समकालिक अनेक पंडितों ने आक्षेप किये थे, उनका संक्षिप्त तथा सारगर्भित उत्तर ऋषि दयानन्द ने अपने 'भ्रान्ति निवारण' नामक लघुग्रन्थ में दिया है। वेदार्थ जिज्ञासुओं के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

6. इस भाष्य में 'बुद्धिपूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे' (वैशेषिक 6/1/1) सिद्धान्त को मानकर मन्त्रार्थ में दर्शाया गया है, अतः इसमें कोई ऐसी ऊटपटाग बात नहीं है, जो अज्ञानमूलक हो।

7. वेद सर्वज्ञ कवि का काव्य है (पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति) अतः उसमें काव्य के अङ्गभूत अलङ्कारों का होना आवश्यक है, वेदभाष्यकारों में सर्व-प्रथम आचार्य दयानन्द ने ही श्लोषादि अलङ्कारों का आश्रय कर के वेदार्थ में बहुविध वैचित्र्य दर्शाया है।

8. "सर्व ज्ञानमयो हि सः" (मनु 2/7) के सिद्धान्त को मान कर वेद में सभी विद्याओं के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन केवल इसी भाष्य में उपलब्ध होता है।

9. किसी भी भाष्यकार ने वेदमन्त्रों के षड्जाति स्वरों का अर्थात् किस मन्त्र का किस स्वर में गान करना चाहिये इस का उल्लेख नहीं किया। पिंगल छन्द के आधार पर इस का निदर्शन सर्वप्रथम ऋषि दयानन्द ने ही अपने भाष्य में किया है।

10. ऋषि दयानन्द ने मन्त्रों के पदार्थ को अन्वय से सर्वथा पृथक् रख कर और पदार्थ में समस्त प्रक्रियाओं में संगत होने वाले विविध निर्वचनों का निदर्शन करा कर वेदार्थ को सीमित नहीं किया। यह इस भाष्य की बड़ी विशेषता है। साथ ही उस के पदार्थ में ऐसे अनेक पदों के निर्वचन ब्राह्मण तथा निरुक्तादि ग्रन्थों में भी नहीं मिलते इत्यादि, ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य की अनेक विशेषताए हैं, जिन का यहाँ पूर्णतया उल्लेख नहीं कर सकते।

□□

शंका समाधान

(आचार्य दार्शनेय लोकेश)

चित्र रखने मात्र से पूजा-अर्चना का कोई सम्बन्ध नहीं-

मैंने अपने जीवन के इन 64 वर्षों में और पूरे तीन चौथाई भारत, जितना कि लगभग मैं घूम चुका हूँ, में कहीं भी आर्यसमाज-जनों के द्वारा महर्षि दयानन्द की मूर्ति को पञ्चोपचार, अष्टोपचार या षोडशोपचार तो क्या मात्र धूप-दीपक से भी अभ्यार्चन किया जाता हुआ नहीं देखा है। जो लोग इन पर स्वामीजी की मूर्ति को पूजने का अभियोग लगाते हैं वे तर्काभाव में केवल ईर्ष्याचार से काम लेते हैं और ऐसे व्यक्ति संस्कृति की पावन गंगा के सबसे बड़े दोषी और दुश्मन हैं। फोटो लगाना एक बात है और उसको औपचारिक विधि से पूजना अलग बात है। अगर हम किसी पंडाल पर इस इतस्ततः अपने प्रियजन की फोटो लगाते भी हैं तो भी ये सब मूर्तिपूजन नहीं कहा जा सकता।

जो मूर्तिपूजा करते हैं, उनको मुझे कोई उपदेश नहीं करना है ना तो पक्ष में और ना ही विरोध में। मैं स्वयं एक मूर्तिपूजक परिवार की ही संतान हूँ किन्तु मेरा अपना विश्वास मूर्ति में ना के बराबर है। अपने मन से मैं माँस-भक्षियों को राक्षस मानता हूँ। परन्तु जो मूर्ति पूजा करते भी हैं उनसे मैं स्वामी विवेकानन्द के दृष्टिकोण से कुछ कहना चाहूँगा। उनका विचार, "जब मैं किसी बच्चे (बालक-बालिका) को मूर्ति का पूजन करते हुए देखता हूँ, तो मुझे उस बच्चे में एक प्रगतिशील मनुष्य की झाँकी दिखती है। किन्तु वही कार्य करते हुए जब मैं किसी युवा वृद्ध पुरुष या वृद्धा स्त्री को देखता हूँ, तो निश्चित ही मुझे उसमें अविकसित आध्यात्मिकता दिखती है। मूर्तिपूजा प्रारम्भिकी है, तो वह जीवन भर के लिए नहीं हो सकती है......" दिन भर चले अढ़ाई कोस जो कि वास्तव में नहीं होना चाहिए।

'अ माने अमरूद, क से कमल' ये वर्ण के शिक्षण की प्रारम्भिकी हो सकती हैं। किन्तु एक स्नातक या परास्नातक के लिए इस विधि का क्या मतलब रह जाता हैं। आज मूर्ति-पूजा कुछ निठल्ले गुणहीनों की रोजी रोटी का अवलम्बन बनता हुआ साफ-साफ दीखता है। मैं प्रतिवर्ष अनाथालय और एक अंधविद्यालय को अपनी यत्किंचित भेंट जरूर चढ़ाता हूँ, किन्तु मंदिरों का चढ़ावा मेरे बस की बात नहीं।

बड़े वेश कीमती पोषाक में सजे, रत्नजड़ित चार अलग-अलग अंगूठियों वाले ऊर्ध्व बाहु मुद्रा से विशाल जनसमूह को प्रवचन देते एक छैल-छबीले से दिखने वाले लम्बे घुघराले बालों वाले 40-42 के आस पास के मॉडर्न सन्त को उधर से गुजरते हुए सुन रहा था... कह रहे थे, मनुष्य का मन बड़ा जटिल है। उसे भक्ति-भाव के जरियें प्रभु से जोड़ने के लिए ही तो मूर्ति-पूजा आवश्यक है। हमारा भगवान जब हमारे सामने होता है, तो हम अपराध, पाप सब कुछ कैसे करेंगे? अरे मौका ही नहीं मिलेगा। एक तो हमारा मन प्रभु से जुड़ा हुआ इधर उधर भागेगा ही नहीं या फिर सामने सामने जब भगवान प्रत्यक्ष होंगे, तो उन से चोरी-छिपे क्या वो पापवृत्ति से कोई कार्य कर सकेगा?... कभी नहीं।

बहुत आगे निकल गया, तो सोचने लगा–

"उत्तमो ब्रह्म सद्भावो, ध्यान भावस्तु मध्यमा,

स्तुतिर्जपोऽधमो भावो बाह्य पूजास्तु अधमाधमा।"

कब ऐसा समय आएगा जब संत और संतों के भक्त इधर भी अपनी ज्ञानवृत्ति कर सकेंगे। मित्रो! इतना तो कह ही दूँ कि ये श्लोक आर्यसमाज का नहीं है। ॐ शम्।

मलमास-

एक सज्जन ने जानना चाहा है कि 19 फरवरी 2015 हमारा पंचांग फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा दिखा रहा है और चैत्रीय नवरात्रे भी प्रचालकित पंचांगों की तरह 21 मार्च से ही शुरू होता दिख रहा है, तो कहीं इसमें मुझ से (सम्पादक, श्री मोहन कृति आर्षतिथि-पत्रक से) कोई गलती तो नहीं हो गयी है? ऐसा वे इसलिए सोच रहे हैं क्योंकि यहाँ पर उनको इस पंचांग और पारम्परिक पंचांगों में प्रायः जो 23-24 दिनों का सामान्य अन्तर दिख रहा था वह अन्तर नहीं दीखता है। मैंने इस सज्जन को धन्यवाद दिया है कि वो हमारे इस वैदिक पञ्चाङ्ग पर इतनी सजगता से ध्यान देने वालों में से एक है।

सभी को ये बात विदित हो जानी चाहिए कि संवत् 2072 में 21 जनवरी 2015 से 18 फरवरी 2015 के बीच फाल्गुन 'एक मलमास' है जो कि प्रचलित और तथाकथित निरयण पंचागों में नहीं दिखाया गया है। इसी कारण से चांद्रमास गणना का जो स्वाभाविक अन्तर बना रहता है, वह अन्तर (संक्रांतियों या सौरमासों के सिवाय) 19 फरवरी 2015 से शून्य हो गया है। केवल संक्रांतियों की सूचना है, जो इस अवधि में भी गलत बनी रहेगी। अर्थात् प्रचलित पंचांग सदैव की भाँति इस अवधि में भी संक्रांतियों की जानकारी गलत ही दे रहे होंगे, किन्तु हम नहीं। हमारा पंचांग ही है, जो कि आपको शुद्ध संक्रांतियों की सूचना देता है और इस अवधि में भी यही सही बनी रहेंगी।

पुनः चूँकि उक्त पंचांगों के पंचांगारों ने 17 जून 2015 से 16 जुलाई 2015 के बीच 'मलमास' दिखाया है, जो कि वास्तव में 'मलमास' है नहीं, त्योहारों का पूर्व अंतर पुनः स्थापित हो जाता है। ज्ञात हो कि 'निरयण संक्रातियाँ वस्तुतः संक्रांतियाँ होती ही नहीं हैं और इन्हीं कथित संक्रांतियों पर आधारित होते हैं इनके ये मलमास भी। इस सन्दर्भ में, कृपया पिछले इस संवत् (2071) का श्री मोहन कृति आर्ष तिथि पत्रक (एक मात्र वैदिक पंचांग) पृष्ठ 5 पर दी गयी सूचना का संज्ञान भी लेना न भूलियेगा। इस टिप्पणी में मार्तण्ड पंचांग के विद्वान् सम्पादक की यह स्वीकृति प्रकाशित है कि वास्तव में 'निरयण संक्रातियाँ हैं ही नहीं।

सम्प्रति प्रति तीसरे वर्ष ऐसा हो रहा है कि तनिक अन्तराल के अन्तर्गत अवैदिक और वैदिक पंचागों के त्यौहार एक तिथियों में आ जाते हैं। याद रहे कि ऐसा तभी तक होगा, जब तक कि प्रचलित और भ्रामक पञ्चाङ्ग और वैदिक सिद्धान्तगत पञ्चाङ्ग के बीच का यह अंतर 30 दिन का नहीं हो जाता। यह स्थिति 432 वर्ष बाद आएगी। फिर ये समानता नहीं आएगी।

धन्य है। मलमासों के इसी यथार्थ से सही, आप प्रति तीसरे वर्ष और चन्द महीनों के लिए अपने तीज-त्यौहार सही तिथियों से मनाते तो हैं। अस्तु गत (05.03.15) की होली और 21 मार्च से शुरु हो रहे चैत्रीय नवरात्रे आदि 16 जुलाई तक के सभी त्योहार हैं, जो पारम्परिक गलत पंचांगों को लेकर चलने वाले भाई-बहिनें भी, सही तिथियों में मना पाएंगे। हमारी ओर से आप सभी को हार्दिक बधाई और मंगल कामनाएँ हैं।

□□

विश्व संगठन के वैदिक आधार-मैत्री और समता

(प्रो० उमाकान्त उपाध्याय, कोलकाता, चल-09432301602)

पश्चिमी देशों में सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का आधार रहा है। डार्विन के विकासवाद का सिद्धान्त - **"योग्यतम् की जीत"**। योग्यतम की जीत का अर्थ लगाया जाता है, जो बलवान हो, संघर्ष में जीत जाये, वही संसार में टिकता है। उदाहरण देते हैं कि छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है और बड़ी मछली का राज होता है। जंगल में शेर आदि निर्बल जानवरों को खाकर जंगल पर राज करते हैं। शेर जंगल का राजा कहा ही जाता है। यही सिद्धान्त मानवसमाज में भी लागू होता है।

पश्चिमी देशों के इस चिन्तन का सबसे बड़ा दोष यह है कि योग्यतम की जीत का यह सिद्धान्त पशु पर तो लग सकता है, किन्तु मनुष्य-समाज पर यह सिद्धान्त लागू नहीं होता। मनुष्य विवेकवान, विचारशील प्राणी है। मनुष्य के लिए उसके स्वभाव में हैं न्याय, सत्य, स्नेह, प्रेम, श्रद्धा। मनुष्य अपने स्वभाव से असत्य और क्रूरता से दूर रहता है। सत्य, परोपकार, दूसरों की भलाई पर मनुष्य को श्रद्धा होती है। परमेश्वर ने मनुष्य को बनाया ही ऐसा है- **"अश्रद्धामनृत्ये दधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।"**

अर्थात् परमेश्वर ने संसार में असत्य, क्रूरता, दुष्टता इत्यादि को देखा और सत्य, करुणा, सज्जनता इत्यादि दोनों तरह के कार्यों को पाया। वेद का मन्त्र यह कहता है कि परमेश्वर ने मनुष्य के हृदय में सत्य, करुणा, दया आदि के प्रति श्रद्धा पैदा कर दी और असत्य, क्रूरता आदि के प्रति अश्रद्धा पैदा कर दी है। अतः आज भी मानव-संगठन का आधार सत्य, करुणा आदि मानवीय गुण है और असत्य क्रूरता आदि दानवीय गुण संघर्ष के आधार हैं।

कार्लमार्क्स ने जब यूरोप के औद्योगिक विकास का अध्ययन किया, तो उसे डार्विन के सिद्धान्त "योग्यतम की जीत" के आधार पर ज्ञात हुआ कि मिल के मालिक उद्योगपति निर्बल मजदूरों का शोषण कर रहे हैं, अतः मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष को उन्नति का आधार बताया। किन्तु यह सर्वत्र लागू होने वाला सिद्धान्त नहीं है। यह मार्क्स के समय में अथवा कभी भी कहीं भी धनवानों द्वारा निर्धन मजदूरों का शोषण है। जैसे योग्यतम की जीत मानव-संगठन का आधार नहीं बन सकता, उसी प्रकार सदा-सर्वत्र वर्ग-संघर्ष भी मानव-संगठन का आधार नहीं हो सकता।

यूरोप में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का आधार **"उपनिवेशवाद"** को बनाया। इसी आधार पर अमेरिका, अफ्रीका, भारतवर्ष आदि देशों में अपने देशों के उपनिवेश बनाये। उपनिवेशवाद का सिद्धान्त सभी देशों में संघर्ष का कारण बना। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर संसार में विश्वयुद्ध हुए। प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध का आधार स्वार्थी राष्ट्रवाद बना।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रों में मिलजुल कर रहने की भावना का थोड़ा सा उदय हुआ। इसका सुफल निकला कि संसार के राष्ट्रों ने लीग आफ नेशन्स का संगठन किया, किन्तु इस राष्ट्रसंघ का यह संगठन बेकार हो गया और संसार ने विश्वयुद्ध का दूसरा नरसंहार का, अत्यनत हृदयविदीर्ण करने वाला हिरोशिमा, नागासाकी का एटम बम की विनाश लीला और हिटलर के गैस चेम्बर की अकल्पनीय विनाश लीला का अनुभव किया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संसार में शान्ति बनी रहे, इसके निमित्त **"संयुक्त राष्ट्रसंघ" (यू०एन०ओ०)** का संगठन किया। विश्वयुद्ध के कारणों का इतिहास कुछ अधिक सुस्पष्ट रूप से सामने था। अतः थोड़ी अधिक सूझ-बूझ, मैत्री और समता दिखायी पड़ती है। संयुक्त

राष्ट्रसंघ का क्षेत्र भी अधिक बड़ा बना। साधारण समिति, सुरक्षा परिषद्, विश्वबैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष आदि की भी संरचना की गयी। यह सभी संगठन थोड़े-अधिक मैत्री और समानता के आधार पर बने हैं किन्तु सब जगह कुछ राष्ट्रों की महिमा संगठन की निर्बलता का कारण बन रही है। अमेरिका अपनी दादागिरी बनाये रखना चाहता है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, चीन का विशेषाधिकार- वीटो-संगठन को निर्बल बना रहा है। ये राष्ट्र अपने स्वार्थ को अन्य देशों से बढ़कर मानते हैं। यह संगठन के लिए बड़ी भारी निर्बलता बन गया है।

विश्वबैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में अमेरिकन डालर का वर्चस्व सर्वोपरि बना रहता है। संसार की अन्य मुद्राएँ, रुपये आदि क्रयशक्ति के आधार पर नहीं हैं। विश्वबैंक या अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष विनिमय दर को विश्व के बाजार के आधार पर रखते हैं जबकि विनिमय का आधार **"क्रयशक्ति की समानता"** (पर्चेजिंग पावर पैरिटी) होना चाहिये। यह असमानता की भावना और सुरक्षा परिषद् आदि में वीटो संयुक्त राष्ट्रसंघ की चिन्ताजनक निर्बलताएँ हैं। ये निर्बलताएँ विश्व संगठन के लिए आत्मघातक सिद्ध हो सकती हैं।

वैदिक आदर्शों के आधार पर समानता और सबका कल्याण, सारे विश्व का कल्याण काम्य है-

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुखः भाग् भवेत्।।"

भारतीय ऋषियों के चिन्तन में जनतंत्र का बहुमत नहीं था। वहाँ ऋषि सर्वसुख सर्वकल्याण की भावना को प्रश्रय देते हैं।

वेद की दृष्टि में भूतमात्र से, प्राणिमात्र से मित्रता की कामना की गयी है-

"मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।"

अर्थात् हम प्राणीमात्र को मित्रता की दृष्टि से देखें और प्राणीमात्र हमें मित्र की दृष्टि से देखे। इस वैदिकसूत्र में केवल मनुष्य के प्रति मैत्री की भावना को अल्प समझा गया है। पशु-पक्षी, संसार के सभी जीव-जन्तुओं को मैत्री की भावना से देखने की कामना है। यही मैत्री की भावना सभी राष्ट्रों में व्याप्त होकर संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे विश्व संगठनों का आधर बने।

संसार के राष्ट्रों के संगठन का आधार राष्ट्रों में समता की भावना है। यदि राष्ट्र आपस में छोटे राष्ट्र, बड़े राष्ट्र, बलशाली राष्ट्र, निर्बल राष्ट्र की भावना रखेंगे, तो समानताहीन विश्व संगठन दोषपूर्ण और निर्बल हो जायेगा।

ऋग्वेद में विश्व नागरिक की अवधारणा :- वेदों के मर्मज्ञ विद्वान् स्वामी सपर्मणानन्द जी (बुद्धदेव विद्यालंकार) ने एक अध्ययन प्रस्तुत किया है- **"ऋग्वेद का मण्डल-मणि-सूत्र।"** ऋग्वेद में दस मण्डल हैं। प्रथम मण्डल से दशम मण्डल तक एक विचारों की मणिमाला मिलती है। यह मणिमाला विश्व संगठन, विश्व शासन और विश्व नागरिक की अवधारणा को पुष्ट करती है। इस विश्व शासन, विश्व नागरिक और विश्व संगठन का आधार नागरिकों और राष्ट्रों में समानता है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त का तीसरा मन्त्र विशेष रूप से समानता का उद्घोष करता है-

"ओं समानो मन्त्रः समितिः समानी,
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः।
सामनेन वो हविषा जुहोमि।।"

मन्त्र का संक्षेप में भाव यह है कि सभी राष्ट्रों में समान विचार हो और संगठन की समितियों में समानता हो। सबके मन व चित्त में समानता हो। सभी राष्ट्रों में चिन्तन और विचार की समानता हो और सारे राष्ट्रों का प्राप्तव्य समानता के आधार पर हो।

यही मैत्री और समानता विश्व संगठन का सुदृढ़ आधार है।

❑❑

वर्तमान समय में वानप्रस्थाश्रम की प्रासंगिकता

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून, मो : 09412985121)

मनुष्य का जन्म माता-पिता से होता है, जो कि ईश्वर की व्यवस्था का पालन करते हुए किसी जीवात्मा को जन्म देने में साधनमात्र हैं। मनुष्य का जन्म कर्म-फल सिद्धान्त के अनुसार पूर्वजन्म में किये गये शुभ व अशुभ कर्मों का फल भोगने व नये शुभाशुभ करने के लिए होता है। संसार का नियम है कि जो भी जीवात्मा मनुष्य या पशु-पक्षी आदि योनियों में उत्पन्न होता है, उसमें शैशव, बालक वा किशोर, युवा, प्रौढ़ एवं वृद्धावस्थाएँ एक के बाद दूसरी आती-जाती रहती हैं मनुष्य की आयु को 100 वर्ष मानकर उसे 25 वर्ष के चार समान भागों में बाँटा गया है। पहला आश्रम ब्रह्मचर्य, दूसरा गृहस्थ, तीसरा वानप्रस्थ एवं चौथा संन्यास है। इन चारों आश्रमों को तर्क संगत आधार पर निर्मित किया गया है। जन्म के बाद कुछ समय माता-पिता द्वारा पालन-पोषण में व्यतीत होता है। उसके बाद मनुष्यों की सन्तानों को आचार्यकुल में भेज कर उन्हें शिक्षा, विद्या व धर्म का ज्ञान कराया जाता हैं। 25 वर्ष तक की आयु में ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए अपने सभी विषयों का अध्ययन पूरा करने का प्रयास किया जाता है। उसके बाद विवाह व सन्तानोत्पत्ति के लिए गृहस्थ-आश्रम का विधान किया गया है। 50 वर्ष की अवस्था होने पर वैदिक व्यवस्था में वानप्रस्थ-आश्रम का विधान है तथा वानप्रस्थ के बाद संन्यासाश्रम का विधान भी मनुष्यों को पालन करना चाहिए, जिससे इस आश्रम से होने वाले लाभ साधकों को प्राप्त हो सकें।

वानप्रस्थ के विधान में कहा गया है कि वानप्रस्थी नगर या ग्राम के आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़, पुत्रों के पास स्त्री को रख अथवा अपने साथ लेकर वन में निवास करे। सांगोपांग अग्निहोत्र को लेके नगर या ग्राम से निकल दृढेन्द्रिय होकर जंगल में जाकर बसे।

वानप्रस्थी के जीवन में जिन कर्तव्यों का पालन करना है, उनका विवरण आगामी पंक्तियों में वर्णनानुसार है। वानप्रस्थियों को नाना प्रकार के अन्न, सुन्दर, शाक, मूल, फल, कन्दादि मुनियों के खाने योग्य अन्नों का उतिच मात्रा में उपयोग करना चाहिए। उसे पंचमहायज्ञों को करते हुए इन्हीं पदार्थों से अतिथि की सेवा और अपना भी निर्वाह करना चाहिए। नित्य आर्षग्रन्थों यथा वेदों, व्याकरण ग्रन्थों, उपनिषद व दर्शन, मनुस्मृति, रामायण व महाभारत आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिए। अपनी इन्द्रियों को जीत कर नियंत्रण में रखना चाहिए। मनुष्यों ही नहीं अपितु प्राणि मात्र के प्रति मित्रता का व्यवहार करना चाहिए। वह नित्यप्रति विद्यादान करे, सब पर दया करे और किसी से कुछ पदार्थ न ले। अपने शरीर के सुख के लिए विशेष प्रयत्न न करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे और भूमि पर सोवे। अपने आश्रित वा स्वकीय पदार्थों में उसे ममता नहीं करनी चाहिए। प्राचीन काल में कुछ वानप्रस्थी वृक्ष के मूल में निवास करते थे। यदि किसी को सम्भव व उपयुक्त हो, तो, वह इसका पालन करे। वानप्रस्थाश्रम में जीवन व्यतीत करते हुए साधक वानप्रस्थी को अनेक प्रकार की तपश्चर्याओं सहित सत्संग, योगाभ्यास और सुचिन्तन से ज्ञान व पवित्रता को धारण व पालन करना चाहिए। यह कर्तव्य विधान वानप्रस्थाश्रम वासियों के लिए निर्धारित

है।

वानप्रस्थाश्रम क्यों किया या लिया जाता है? इसका उत्तर यह है कि हमने 25 वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्यार्जन किया। उसके बाद 25 वर्ष व कुछ अधिक गृहस्थाश्रम में रहकर धनोपार्जन कर घर बनाया, सन्तान उत्पन्न कर उनको शिक्षित किया वा उनके विवाह आदि कराये, उनकी सन्तानों के जन्म में अपने अनुभवों से परिवारजनों को लाभान्वित किया व अपनी सन्तानों को उनके ज्ञान, योग्यता व क्षमता के अनुसार व्यवसाय में सहायता की। अब मनुष्य प्रायः गृहस्थ के दायित्वों से मुक्तप्रायः हो जाता है। सन्तान उत्पन्न कर व उन्हें शिक्षित करके, उनको व्यवसाय में स्थापित कर, उनके विवाह आदि कर व उनकी सन्तानों के जन्म आदि हो जाने पर गृहस्थी अपने पितृऋणादि कर्त्तव्यों से मुक्त हो जाते हैं। अब उन्हें धन कमाने की आवश्यकता नहीं है। अब एक ही कार्य बचता है कि अपना अनुभूत ज्ञान व तकनीकी ज्ञान समाज व देश को प्रदान कर उसे समुन्नत करना और अपना अधिकांश समय ऐसे कार्यों यथा सन्ध्या, उपासना, यज्ञ-अग्निहोत्र, सेवा, परोपकार, विद्वान् अतिथियों की संगति व उनका सत्कार जैसे कार्यों को करके मोक्षत्व की ओर बढ़ना अथवा अपना भावी जीवन सुधारना। यह मोक्षत्व एवं भावी जीवन के सुधार व तैयारी का कार्य एवं समाज को अपने ज्ञान व अनुभवों से लाभान्वित करने का कार्य ही वानप्रस्थी बन कर किया जाता है। अपने परिवारजनों के साथ रहकर यह कार्य विधि-विधान के अनुसार सम्पन्न होने में कठिनाइयाँ आती हैं। वहाँ रोग व शोक के समाचार होते रहते हैं जो साधना में बाधक होते हैं। अतः आवश्यकता है कि अपने गृह व परिवारजनों से दूर रहकर साधना की जाये। अतः वानप्रस्थाश्रम का तर्कसंगत आधार है, जो कि आज की परिस्थितियों में भी प्रासंगिक है।

वानप्रस्थ से जुड़ा हुआ एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि गृहस्थजीवन को त्याग कर मनुष्य कहाँ जाये? वनों में तो आज अनुकूल परिस्थितयाँ हैं नहीं, जहाँ जाकर व रहकर सुख व विधि-विधानानुसार वानप्रस्थ की साधना की जा सके। आजकल देश में अनेक स्थानों पर वृद्धाश्रम बने हुए हैं, परन्तु अनुमान है कि वहाँ भी व्यवस्थाएँ सराहनीय व आवश्यकता के अनुरूप नहीं हैं। कई लोग तो घर छोड़कर आश्रमों में चले जाते हैं परन्तु उनके अनुभव अच्छे नहीं होते। ऐसी अवस्था में विकल्प यही बचता है कि यदि कहीं अच्छा सुव्यवस्थित आश्रम हो, तो पति-पत्नी वहाँ जा कर रह सकते हैं, अन्यथा अपने घर पर रहकर प्रायः एकान्तसेवन करते हुए साधनापूर्वक जीवन व्यतीत करें। आर्यसमाज के अनेक विद्वान् व नेता प्रायः सभी ऐसा कर रहे हैं। हाँ, सभी विद्वानों व नेताओं को इस पर मंथन अवश्य करना चाहिए। आज की परिस्थितियों में यदि कोई मार्ग निकलता है तो उसका पालन करना चाहिए अन्यथा अपने घर पर रहकर ही वानप्रस्थआश्रम की मर्यादा का पालन करना चाहिए। हाँ, प्रत्येक वानप्रस्थियों को प्रतिदिन की साधना व कर्तव्य-कर्मों की उनकी जो समय-सारिणी है, उसको दृष्टिगत रखते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। हम सभी विद्वानों से इस विषय में मार्गदर्शन एवं सुझाव आमंत्रित करते हैं। यदि कोई व्यक्ति परिवार के दायित्वों से मुक्त होकर भी धनोपार्जन आदि कार्यों में संलग्न है तो हमें लगता है कि वह वानप्रस्थ के कर्तव्यों व दायित्वों के विपरीत कार्य होने के कारण अनेक लाभों से वंचित हो सकता है।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/४/२०१५
भार- ४० ग्राम

अप्रैल 2015

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

— दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में..
ग्राम..
डा0 ....
जिला..

प्रकाशक : धर्मपाल आर्य, ४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-६
मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीताराम, दिल्ली-६